प्रेक्षाध्यान

दर्शन और प्रयोग

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रेक्षाध्यान
दर्शन और प्रयोग

आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक :
मुख्य नियोजिका
साध्वी विश्रुतविभा

प्रकाशक :

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राज.) 341306

जिला : नागौर (राजस्थान)

फोन : 01581-226025, 226080, 224671

फैक्स : 01581-226097

e-mail:jainvishvabharati@yahoo.com

ISBN 978-81-7195-166-6

© जैन विश्व भारती

प्रथम संस्करण : 2011

द्वितीय संस्करण : जनवरी, 2012

तृतीय संस्करण : नवम्बर, 2012

संस्करण : जुलाई, 2015

मूल्य : चालीस रुपये मात्र

मुद्रक : सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

Prekshadhyan : Darshan Aur Prayog
by Acharya Mahapragya ₹ 40

प्रस्तुति

संसार में अनेक योग साधना पद्धतियां प्रचलित हैं। उनमें एक है प्रेक्षाध्यान। इस पद्धति का प्रादुर्भाव परम पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी की सन्निधि में परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा किया गया। पिछले लगभग चार दशकों में इस पद्धति ने देश-विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस विषय में साहित्य भी प्रकाशित हुआ है और यत्र-तत्र शिविर भी लग रहे हैं। परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी इसके पुरोधा रहे। इस पद्धति की एक प्रामाणिक और आधारभूत पुस्तक की अपेक्षा महसूस की गई। विभिन्न प्रशिक्षक प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करवाते हैं, उन सबमें एकरूपता रह सके– यह वांछनीय है। उसके लिए एक आदर्श पुस्तक की आवश्यकता होती है। परमपूज्य आचार्यश्री का चिन्तन था–एक ऐसी पुस्तक प्रतिष्ठित हो, जिसका सभी प्रशिक्षक अनुगमन करें। इस सारे संदर्भ में 'प्रेक्षाध्यान : दर्शन और प्रयोग' पुस्तक प्रस्तुत हो रही है।

इस पुस्तक के निर्माण में परमपूज्यश्री ने अपने जीवन के अंतिम दिन तक श्रम किया। मुख्यनियोजिका साध्वी विश्रुतविभा आचार्यश्री की सन्निधि में बैठती और पूज्यश्री के वचनों का श्रुतलेखन करती। यह पुस्तक प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने और व्यवस्थित प्रयोग-पद्धति को प्रस्तुत करने में सफल हो। यही शुभाशंसा।

दि. ५ नवम्बर, २०१० **आचार्य महाश्रमण**
सरदारशहर

संपादकीय

श्रीडूंगरगढ़ में आचार्यप्रवर का मर्यादा महोत्सव के संदर्भ में दीर्घकालीन प्रवास। मर्यादा महोत्सव सन् २०१० की सानंद संपन्नता। ७ फरवरी २०१० फाल्गुन कृष्णा एकम का दिन। प्रायः दैनिक क्रम के अनुसार प्रातराश के बाद मैं पूज्यवर के सान्निध्य में उपस्थित थी। समणीवृंद भी उस समय उपासना में संभागी बन चुके थे। पूज्यवर ने अनायास अतिरिक्त करुणा बरसाते हुए बिना किसी पूर्व भूमिका के फरमाया—'आज तुम्हें एक नयी पुस्तक लिखाना शुरू करना है।'

उत्सुक व प्रश्नायित नयनों के साथ मैंने पूछा—'किस विषय पर?'

आचार्यवर ने फरमाया—'प्रेक्षाध्यान के दार्शनिक दृष्टिकोण पर। अब तक प्रेक्षाध्यान की अनेक पुस्तकें आ चुकी हैं, किंतु अभी प्रेक्षा-दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं लिखा गया है। मैं प्रेक्षाध्यान के दार्शनिक चिंतन को लिखाना चाहता हूं। इसके साथ ही 'प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति' को भी व्यवस्थित कराना है।'

इसके कारण की ओर इंगित करते हुए पूज्यप्रवर ने फरमाया—'प्रेक्षाध्यान के शिविरों में प्रारंभ में मैं स्वयं ध्यान के प्रयोग कराता था। इन वर्षों में वह क्रम अवरुद्ध हो गया। आजकल मुनि किशनलालजी और मुनि महेन्द्रकुमारजी ध्यान कराते हैं। अन्य स्थानों पर आयोजित होने वाले प्रेक्षाध्यान शिविर कई प्रशिक्षकों द्वारा संचालित हो रहे हैं। प्रयोग कराने वालों ने अपने-अपने तरीके से प्रयोग कराना शुरू कर दिया है। इसलिए एक बार संपूर्ण प्रयोगों की समीक्षा कर उन्हें व्यवस्थित करना अपेक्षित है।'

मैंने पूछा—'आचार्यवर! पुस्तक लेखन-कार्य कब शुरू कराएंगे?'

तत्काल आचार्यवर ने फरमाया—'आज ही और अभी से।'

अहोभाव से आपूरित हो तत्काल मैं लिखने के लिए तत्पर हो गई।

आचार्यवर ने दो क्षण के लिए निमीलित नयनों से ध्यान किया और सबसे पहले पुस्तक का नामकरण कर दिया—'प्रेक्षाध्यान : दर्शन और प्रयोग।' फिर बिना किसी औपचारिकता के लिखाने का क्रम प्रारंभ हो गया। आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता मुझे इस बात की थी कि प्रायः अकर्ताभाव में रहने वाले आचार्यप्रवर ने स्वयं की ओर से लिखाने का निर्देश दिया। संभव है किसी के द्वारा कोई निवेदन या आवश्यकता प्रस्तुत की गई हो और लिखाने के लिए अनुग्रह मुझ पर कराया। अन्यथा प्रायः कुछ नया लिखने के लिए मैं ही समय-समय पर पूज्यवर के चरणों में अनुरोध करती। मेरी भावना का सम्मान रखते हुए पूज्यवर ने अपनी अनेक कृतियों के लेखन में मुझे सहभागी बनाया।

जो भी हो, इस पुस्तक के संदर्भ में कुछ नया-नया-सा मुझे हरदम लगा। मैंने अनुभव किया—आचार्यवर के मन में इस पुस्तक को लिखाने की तत्परता थी। प्रातराश के पश्चात् का समय तो इसके लिए निर्धारित था ही, मध्याह्न में भी अन्यान्य कार्य को गौण कर प्रस्तुत पुस्तक के लेखन को प्राथमिकता देते थे। अविलम्बता के साथ इस कार्य की गति-प्रगति के साथ ९ मई २०१० का दिन आ गया।

निःशेषम् के अद्भुत प्रयोक्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रातराश के बाद फरमाया—'आज रविवार है। आगम कार्य का अवकाश है। तुम्हारे लेखन का कार्य पहले करवा दें।' उन दिनों में पूज्य गुरुदेव 'प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति' का पुनर्निरीक्षण करवा रहे थे। प्रयोगों में अनेक स्थानों पर यथोचित परिवर्तन का निर्देश देते हुए फरमाया—लेश्याध्यान का प्रयोग पुस्तक में व्यवस्थित नहीं है। तुम नया लिखो। एक पूरा प्रयोग लिखा दिया। आगे कहा—इसी क्रम से अवशिष्ट प्रयोग तुम स्वतः लिख लेना। स्वीकारोक्ति सूचक 'तहत्' कहते हुए मैं वंदना कर उठने लगी। न जाने क्यों? फिर मुझे रोकते हुए गुरुदेव ने फरमाया—'प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति' का प्रायः पुनर्निरीक्षण कर लिया है। लगभग तुम्हें पूरी पुस्तक लिखा दी है। सिर्फ अनुप्रेक्षा का अध्याय अवशिष्ट रहा है। इस वार्ता का विराम सदा-सदा के लिए पूर्णविराम जैसा होगा—ऐसा तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था। पर नियति को यही मान्य था।

महायोगी महाप्रज्ञ ज्ञान के अगाध समंदर थे। उनसे यत्किंचित् मोतियों को बटोरने का मुझे सुअवसर मिला। इसे मैं अपने पूर्वजन्म के सुकृत का ही फल मानती हूं।

पूज्यवर की पुस्तकों के संयोजन-संपादन का कार्य शासनगौरव मुनिश्री धनंजयकुमारजी दीर्घ काल से कर रहे हैं। प्रस्तुत कृति में भी उनकी भूमिका मुखर रही है। साध्वी शुभ्रयशाजी और समणी निर्मलप्रज्ञाजी का प्रूफ निरीक्षण में तथा समणी सौम्यप्रज्ञाजी का टंकण करने में निष्ठापूर्ण श्रम रहा।

दि. ८ नवम्बर, २०१० **साध्वी विश्रुतविभा**
सरदारशहर

अनुक्रम

- **प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक आधार** **११-५६**
  - १. प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक दृष्टिकोण १३
  - २. प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य : चित्त-शुद्धि १६
  - ३. प्रेक्षाध्यान का अर्थ १८
  - ४. प्रेक्षाध्यान का आधार २०
  - ५. उपसंपदा : प्रेक्षाध्यान की जीवन शैली २२
  - ६. अर्हम् २७
  - ७. आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें २९
  - ८. कायोत्सर्ग ३१
  - ९. अन्तर्यात्रा ३३
  - १०. श्वासप्रेक्षा ३५
  - ११. शरीरप्रेक्षा ३९
  - १२. चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा ४४
  - १३. लेश्याध्यान ४७
  - १४. प्रेक्षाध्यान का परिकर ४९
  - १५. प्रेक्षा योग ५५
- **प्रेक्षाध्यान : प्रायोगिक स्वरूप** **५७-८६**
  - प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति ५९
  - १. प्रेक्षाध्यान ६०
  - २. अनुप्रेक्षा ७५
  - ३. सम्पूर्ण कायोत्सर्ग ८३
- **परिशिष्ट** **८७-९६**
  - मंगल-भावना ८८
  - आनन्द-भावना ८९
  - प्रेक्षा-संगान ९१
  - प्रेक्षाध्यान गीत ९२
  - प्रेक्षा-ध्यान का ध्येय ९३
  - प्रेक्षा-प्रशिक्षक की अर्हताएं ९४
  - अणुव्रत आचार-संहिता ९६

प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक आधार

प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक दृष्टिकोण

द्वंद्वात्मक अस्तित्व

हमारा अस्तित्व दो तत्त्वों का संयोग है–

१. आत्मा (चेतना)

२. शरीर (पुद्गल)

अनात्मवादी दार्शनिक केवल शरीर को वास्तविक मानते हैं। वे आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते।

आत्मवादी दार्शनिक आत्मा और शरीर को भिन्न मानते हैं। वे आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते हैं। आत्मवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर तक की यात्रा करना आवश्यक है।

शरीरवादी दृष्टिकोण की सीमा है–स्थूल शरीर, इन्द्रिय और मन।

आत्मवादी दृष्टिकोण का विषय क्षेत्र व्यापक है–मन से आगे चित्त और भाव। इनके द्वारा शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति का संचालन होता है।

भाव का निर्माण लेश्या के द्वारा होता है। सूक्ष्म शरीर (तैजस शरीर) से आने वाले प्रकम्पन या रश्मिचक्र ही लेश्या हैं। उसके आगे कर्मशरीर (सूक्ष्मतम शरीर) है और उसके आगे है आत्मा। आत्मा और सूक्ष्म शरीर का संबंध कषाय-वलय और अध्यवसाय से होता है।

आत्मा की प्रवृत्ति के द्वारा कर्म-परमाणुओं का आकर्षण होता है। वे कर्म-परमाणु कर्मशरीर की रचना करते हैं। वह सूक्ष्मतम होता है। वह आत्मा की अभिव्यक्ति में बाधक बनता है। उसका एक तंत्र आत्मा के ज्ञान को आवृत करता है, उसे अभिव्यक्त नहीं होने देता, फिर भी उसका कुछ भाग अनावृत रहता है।

उसका दूसरा तंत्र आत्मा की शक्ति को स्खलित करता है। उसका तीसरा तंत्र कषाय के वलय का निर्माण करता है। उससे विकृति पैदा होती है।

बादल सूर्य को ढक देते हैं फिर भी दिन और रात का विभाग स्पष्ट रहता है।

कर्मशरीर का आत्मा पर आवरण बनता है फिर भी आत्मा और कर्मशरीर का स्पष्ट विभाग रहता है।

आत्मा से चैतन्य की रश्मियां कर्मशरीर के वलय का भेदन कर बाहर निकलती हैं किन्तु उनकी प्रकाश-शक्ति बहुत कम होती है।

चैतन्य के स्पन्दन और कर्मशरीर के स्पन्दन निरंतर गतिशील रहते हैं। वे सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ते हैं। इस गतिक्रम में वे तैजस शरीर तक पहुंच जाते हैं। वहां तैजस शरीर के स्पन्दन उनके (चैतन्य और कर्मशरीर) साथ मिलकर कर्मशरीर के स्पन्दनों को नाना-रंगों से रंजित करते हैं। इस प्रक्रिया में चैतन्य और कर्मशरीर के स्पन्दन लेश्या के रूप में बदल जाते हैं।

चैतन्य के स्पन्दन, कर्मशरीर के स्पन्दन और तैजस शरीर के विद्युतीय स्पंदन गति-वेग के साथ स्थूल शरीर में प्रवेश करते हैं। उनका मुख्य केन्द्र बनता है मस्तिष्क। नाड़ी तंत्र, संधि, स्रोत और मर्मस्थान उनके उपकेन्द्र बन जाते हैं। हठयोग की भाषा में इन्हें चक्र और प्रेक्षाध्यान की भाषा में इन्हें चैतन्यकेन्द्र कहा जाता है।

चैतन्य के स्पन्दन मस्तिष्क में चित्त का निर्माण करते हैं। चैतन्य के स्पन्दन, कर्मशरीर के स्पन्दन और तैजस शरीर के स्पन्दन मिलकर भाव का निर्माण करते हैं।

प्रवृत्ति के तीन स्रोत

प्रवृत्ति के तीन स्रोत हैं—शरीर, वाणी और मन। चित्त और भाव दोनों संयुक्त रूप से इनका संचालन करते हैं। चैतन्य शुद्ध होता है। भाव और लेश्या—ये शुभ और अशुभ, दोनों प्रकार के होते हैं। जब चित्त का शुभ भाव और शुभ लेश्या के साथ योग होता है तब शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति शुभ हो जाती है और जब चित्त का अशुभ भाव और अशुभ लेश्या

के साथ योग होता है तब शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति अशुभ बन जाती है।

भाव तंत्र या लेश्या तंत्र हमारे संचित कर्म या संस्कारों का झरना है। कर्म के इस प्रवाह के बाहर आने का माध्यम है अन्तःस्रावी ग्रंथि-तंत्र (Endocrine System)। जब लेश्या से भावित अध्यवसाय आगे बढ़ते हैं तब वे हमारे ग्रंथि-तंत्र को प्रभावित करते हैं। इन ग्रंथियों के स्राव संभवतः कर्मों का अनुभाग या विपाक हैं। ये हॉर्मोंस अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से स्रवित होने वाले रासायनिक द्रव्य हैं जो रक्त के साथ मिलकर दैहिक एवं मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। उनसे हमारा चिन्तन, वाणी, आचार और व्यवहार संचालित और नियंत्रित होते हैं। इस प्रकार ये ग्रंथि-तंत्र और स्थूल शरीर के मध्य परिवर्तक का कार्य करते हैं। वे चेतना के अतिसूक्ष्म आदेशों को भौतिक स्तर पर परिवर्तित कर स्थूल शरीर और मन तक पहुंचा देते हैं।

ग्रंथि-तंत्र के रसायन (Hormones) के निर्देशों को क्रियान्वित करने के लिए योग-तंत्र (क्रिया-तंत्र) सक्रिय हो जाता है। उसके तीन अंग हैं– १. शरीर, २. वाणी और ३. मन। शरीर का काम है कायिक प्रवृत्ति। वाणी का काम है बोलकर अपनी बात दूसरों तक पहुंचाना। मन का काम है–स्मृति, कल्पना और चिन्तन करना।

मनुष्य की समस्त क्रियाएं अध्यवसाय, कर्मशरीर, तैजस शरीर, चित्त और भाव से संचालित होती हैं। इसलिए मनुष्य का अस्तित्व पूर्ण स्वतंत्र नहीं है।

प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य : चित्त-शुद्धि

प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है चित्त-शुद्धि और भावशुद्धि। 'मैं चित्त-शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का अभ्यास कर रहा हूं'—इस संकल्प सूत्र के साथ ध्यान का प्रारम्भ होता है। ध्यान का प्रयोग करने वाला श्वास का आलम्बन लेकर मन को एकाग्र करता है। जो साधक सब चिन्तनों से मुक्त होकर केवल श्वास को देखता है, चित्त-शुद्धि के लक्ष्य के साथ देखता है, उस समय वह राग-द्वेष से मुक्त क्षण में होता है। इसलिए वह एकाग्र ध्यान चित्त-शुद्धि व भावशुद्धि का साधन बन जाता है। श्वासप्रेक्षा आदि का अभ्यास करने वाले की एकाग्रता जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे-वैसे उसकी ध्यान की चेतना भी बढ़ती जाती है। अभ्यास परिपक्व होने पर वह आलम्बन को छोड़कर निरालम्बन ध्यान में चला जाता है, विचार और विकल्प समाप्त हो जाते हैं। निर्विचार और निर्विकल्प ध्यान की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

चित्त-शुद्धि होने पर मन, वचन और काया की प्रवृत्ति शुभ होती है। राग और द्वेष अथवा कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चित्त-अशुद्धि के मूल कारण हैं। चित्त-शुद्धि का क्षण राग-द्वेष मुक्त क्षण होता है, वीतरागता का क्षण होता है। वीतरागता के क्षण जितने प्रलम्ब होते हैं, उतनी ही सुख-दुःख में सम रहने की चेतना जागृत रहती है।[१]

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—क्षमा का विकास, सहिष्णुता का विकास, प्रिय-अप्रिय, अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करने की शक्ति का विकास।

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—मृदुता का विकास, विनम्रता का विकास।

---

१. उत्तरज्झयणाणि, २९.३७—कषायपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
कषायपच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ। वीयरागभावपडिवन्ने वि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ।।

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—ऋजुता-सरलता का विकास।

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—संतोष का विकास, अनासक्ति का विकास, मूर्च्छा अथवा ममत्व के विसर्जन का विकास।

प्रेक्षाध्यान का अर्थ

'प्रेक्षा' शब्द ईक्ष धातु से बना है। इसका अर्थ है देखना। प्र+ईक्षा= प्रेक्षा, इसका अर्थ है गहराई में उतरकर देखना। 'देखना' ध्यान का मूल तत्त्व है। इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम 'प्रेक्षाध्यान' रखा गया है।

जानना और देखना, चेतना का लक्षण है। आवृत चेतना में जानने और देखने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को विकसित करने का सूत्र है—जानो और देखो।

चिन्तन, विचार या पर्यालोचन करो—यह बहुत गौण और बहुत प्रारम्भिक है। यह साधना के क्षेत्र में बहुत आगे नहीं ले जाता।

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो'—यह अध्यात्म चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र का अभ्यास हम शरीर से प्रारम्भ करते हैं। आत्मा शरीर में है। इसलिए स्थूल शरीर को देखे बिना आगे नहीं देखा जा सकता। श्वास शरीर का ही एक अंग है। हम श्वास से जीते हैं इसलिए सर्वप्रथम श्वास को देखें। हम शरीर में जीते हैं इसलिए शरीर को देखें। शरीर के भीतर होने वाले स्पन्दनों, प्रकम्पनों या घटनाओं को देखें। इन्हें देखते-देखते मन पटु हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता है, फिर अनेक सूक्ष्म स्पन्दन दीखने लग जाते हैं। वृत्तियां या संस्कार जब उभरने लगते हैं, तब उनके स्पन्दन स्पष्ट होने लग जाते हैं।

हम देखते हैं, तब सोचते नहीं हैं और जब सोचते हैं तब देखते नहीं हैं। विचारों का जो सिलसिला चलता है, उसे रोकने का सबसे अन्तिम साधन है देखना। आप स्थिर होकर अपने भीतर देखें, अपने विचारों को देखें या शरीर के प्रकम्पनों को देखें तो पाएंगे कि विचार समाप्त हो रहे हैं। भीतर की गहराइयों को देखते-देखते सूक्ष्म शरीर को भी देखने लगेंगे। जो भीतरी सत्य को देख लेता है, उसमें बाहरी सत्य को देखने की क्षमता अपने-आप आ जाती है।

देखना वह है, जहां केवल चैतन्य सक्रिय होता है। जहां प्रियता और अप्रियता का भाव आ जाए, वहां देखना गौण हो जाता है।

मध्यस्थता या तटस्थता प्रेक्षा का ही दूसरा रूप है। जो देखता है, वह सम रहता है। वह प्रिय के प्रति राग-रंजित नहीं होता और अप्रिय के प्रति द्वेषपूर्ण नहीं होता। वह प्रिय और अप्रिय, दोनों की उपेक्षा करता है।

प्रेक्षाध्यान का आधार

मनुष्य पूर्ण परतंत्र नहीं है इसलिए वह अपने चैतन्य का प्रयोग कर कषाय-वलय का भेदन कर सकता है। कषाय का वलय उसे पदार्थ की ओर ले जाता है। चैतन्य के स्पन्दन उसे आत्मा की ओर ले जाते हैं।

चैतन्य के स्पन्दन कषाय के स्पन्दन से विलग होकर योग-तंत्र को शुभ बनाते हैं। प्रेक्षाध्यान के द्वारा हम शुभयोग के स्पन्दनों को शक्तिशाली बनाते हैं। वे स्पन्दन फीडबैक प्रक्रिया के अनुसार लेश्या को शुभ बनाते हैं। लेश्यातंत्र को शुभ बनाकर कर्मशरीर की सघनता को कम करते हैं। जैसे-जैसे कर्मशरीर की सघनता कम होती है वैसे-वैसे आत्मा या चेतना का प्रकाश बाहर आने लगता है। इसी प्रक्रिया का नाम है आत्मा का साक्षात्कार।

कषाय-वलय को पुष्ट करने वाले दो तत्त्व हैं–राग और द्वेष। कषाय-वलय को दुर्बल बनाने का साधन है–राग-द्वेष मुक्त चेतना, वीतराग चेतना। प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है–राग-द्वेष मुक्त क्षणों में जीने का अभ्यास, वीतराग चेतना की अनुभूति का अभ्यास।

अध्यवसान (सूक्ष्म चैतन्य) की दो अवस्थाएं हैं[१]–स्थिर और चंचल।

एक वस्तु अथवा एक ध्येय में स्थिर होने वाले अध्यवसान को ध्यान कहा जाता है।

वस्तु और ध्येय में परिवर्तन करने वाले अध्यवसान का नाम है चित्त। इसका वस्तु-विषय और ध्येय एक नहीं रहता, बदलता रहता है। इसके तीन रूप हैं[२]–

१. भावना, २. अनुप्रेक्षा और ३. चिंता–चिंतन।

---

१. ध्यानशतक, गा.३०–जं थिरमज्झवसाणं तं झाणं जं चलं तं चित्तं।

२. ध्यानशतक गा. २–तं होज्ज भावणा वा अणुप्पेहा वा अहव चिंता।

अध्यवसान का अर्थ है सूक्ष्म चेतना, अन्तःकरण। यह चित्त नहीं है। चित्त इससे भिन्न है।

चित्त–स्थूल शरीर के साथ काम करने वाली चेतना, यह मन नहीं है। मन पौद्गलिक है इसलिए इससे भिन्न है। वह चित्त से संक्रान्त होकर ज्ञानयुक्त बनता है, उसे तात्त्विक भाषा में भाव-मन कहा जाता है।

भावना–ध्येय का बार-बार अभ्यास करना।[१]

अनुप्रेक्षा–शरीर आदि के स्वभाव का अनुचिंतन करना।[२]

चिंता–स्मृति, कल्पना और विचार करना।

अध्यवसान को स्थिर किया जा सकता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है। मन स्वभाव से चंचल है। उसको स्थिर नहीं किया जा सकता। उसे एकाग्र किया जा सकता है।

ध्यान के दो प्रकार हैं–१. एकाग्र ध्यान, २. निर्विचार ध्यान।

एकाग्रता सालम्ब ध्यान है और निर्विचारता निरालम्ब ध्यान है।

किसी एक आलम्बन पर मन का निरोध करना सालम्ब ध्यान है।[३] चेतना अपने स्वरूप में लीन होकर मन से परे होती है, वह निरालम्ब ध्यान है। वास्तव में निरालम्ब ध्यान ही अध्यात्म अथवा आत्मानुभूति है।

---

१. ध्यानशतक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २–भाव्यते इति भावना, भावनाध्यानाभ्यासक्रियेत्यर्थः।

२. तत्त्वार्थवार्तिक ९.२.४–शरीरादीनां स्वभावानुचिन्तनमनुप्रेक्षा।

३. (क) तत्त्वार्थ सूत्र ९.२७–एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्।
   (ख) तत्वानुशासन् गा. ५६–एकाग्रचिन्तारोधो यः परिस्पन्देन वर्जितः।।

उपसंपदा : प्रेक्षाध्यान की जीवन शैली

प्रेक्षाध्यान के प्रारम्भ में उपसंपदा–दीक्षा स्वीकार की जाती है। यह समग्र जीवनदर्शन है। ध्यान और जीवन को कैसे एकरस किया जाए, कैसे समग्रता से जीवन जीया जाए, इसका पूरा दर्शन उपसंपदा में प्राप्त है।

उपसंपदा के चार सूत्र हैं–

१. अब्भुट्ठिओमि आराहणाए–

मैं प्रेक्षाध्यान की साधना के लिए उपस्थित हुआ हूं।

२. मग्गं उवसंपज्जामि–

मैं अध्यात्म-साधना का मार्ग स्वीकार करता हूं।

३. सम्मत्तं उवसंपज्जामि–

मैं अन्तर्दर्शन की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।

४. संजमं उवसंपज्जामि–

मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।

ये उपसंपदा के चार सूत्र ध्यान की मानसिक तैयारी के सूत्र हैं।

पहली उपसंपदा में व्यक्ति अपने संकल्प को दृढ़ करता है।

दूसरी उपसंपदा में वह अध्यात्म के मार्ग पर चलने का संकल्प करता है।

तीसरी उपसंपदा में वह अन्तर्दर्शन की अनुभूति कराने वाले मार्ग पर चलने का संकल्प करता है।

चौथी उपसंपदा में वह आध्यात्मिक अनुभव करने का संकल्प करता है, वह संयम के बिना नहीं होता। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि संयम की साधना के द्वारा आध्यात्मिक अनुभव करने का संकल्प करता है।

उपसंपदा के इन चार सूत्रों की स्वीकृति प्रेक्षाध्यान साधना की दिशा में पहला प्रस्थान है।

उपसंपदा के पांच सूत्र जीवन शैली से जुड़े हुए हैं। जीवन शैली से जुड़े इन सूत्रों की स्वीकृति प्रेक्षाध्यान साधना की दिशा में दूसरा प्रस्थान है। वे पांच सूत्र इस प्रकार हैं–

१. भावक्रिया

इसका अर्थ है कार्य के प्रति सर्वात्मना समर्पण। इसके अभ्यास के तीन आयाम हैं–(१) वर्तमान में जीना, (२) जानते हुए करना, (३) अप्रमत्त रहना (जागरूक रहना)।

(१) वर्तमान में जीना

इसका तात्पर्य है वर्तमान में जीने का अभ्यास। स्मृति के क्षणों में जीना अतीत के क्षणों में जीना है। कल्पना के क्षणों में जीना भविष्य के क्षणों में जीना है। ध्यान करते समय स्मृति अथवा कल्पना आती है तो वह एकाग्रता को बाधित करती है। स्मृति आवश्यक हो उस समय स्मृति, कल्पना आवश्यक हो उस समय कल्पना और चिंतन आवश्यक हो उस समय चिन्तन। ये तीनों अपनी-अपनी आवश्यकता के क्षणों में आएं, अनावश्यक न आएं–इसका अर्थ है वर्तमान में जीना।

स्मृति आवश्यक है पर अनावश्यक स्मृति एकाग्रता को बाधित करती है।

कल्पना भी आवश्यक है पर अनावश्यक कल्पना एकाग्रता को बाधित करती है।

चिंतन आवश्यक है पर अनावश्यक चिंतन एकाग्रता को बाधित करता है।

(२) जानते हुए करना

मन तीन प्रकार का होता है[1]–

१. तन्मन–लक्ष्य में लगा हुआ मन।

२. तदन्यमन–लक्ष्य के विपरीत किसी दूसरी वस्तु में लगा हुआ मन।

---

१. ठाणं ३.१५७–तिविहे मणे पण्णत्ते, तं जहा–तम्मणे, तयण्णमणे, णोअमणे।

३. नोअमन—मन का लक्ष्यहीन व्यापार।

ध्यान की साधना करने वाला श्वास की प्रेक्षा कर रहा है और उसका मन श्वास के आलम्बन को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु में चला जाता है, वह तदन्यमन की अवस्था है। इस अवस्था में जीने वाला जो क्रिया करता है वह जानते हुए नहीं करता। जानते हुए करने का तात्पर्य है—जो लक्ष्य बनाया है, मन उसी में लगा रहे।

(३) अप्रमत्त रहना (जागरूक रहना)

ध्यान का स्वरूप है अप्रमाद, चैतन्य का जागरण या लक्ष्य की सतत स्मृति। जो जागृत होता है, वही अप्रमत्त होता है। जो अप्रमत्त होता है, वही एकाग्र होता है। एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है।

२. प्रतिक्रिया-विरति

प्रतिक्रिया—यह चेतना की संवेगात्मक अवस्था है। क्रिया करते समय अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति आती है, उसके अनुरूप दैहिक, मानसिक और भावात्मक अथवा संवेगात्मक प्रतिक्रिया होती रहती है। भीतर के आवेग परिस्थिति के साथ समायोजन नहीं कर पाते, उस स्थिति में प्रतिक्रियाएं होती हैं और व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है। कुछ प्रतिक्रियाएं सरल होती हैं और कुछ जटिल। इनको समझने के लिए क्रोध की चार प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करना आवश्यक है[1]—

१. पानी पर खींची हुई रेखा,

२. बालू पर खींची हुई रेखा,

३. मिट्टी पर खींची हुई रेखा,

४. पत्थर पर खींची हुई रेखा।

पानी पर खींची हुई रेखा सरल प्रतिक्रिया है, वह रेखा तत्काल मिट जाती है।

बालू पर खींची हुई रेखा कुछ जटिल प्रतिक्रिया है, वह हवा के झोंके के साथ ही मिट जाती है।

---

१. ठाणं ४.३५४—चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—पव्वयराइसमाणे, पुढविराइसमाणे, वालुयराइसमाणे, उदगराइसमाणे।

मिट्टी पर खींची हुई रेखा जटिलतर प्रतिक्रिया है, वह दीर्घकाल तक अवस्थित रहती है।

पत्थर पर खींची हुई रेखा जटिलतम प्रतिक्रिया है, वह जीवन पर्यन्त रहती है।

प्रतिक्रिया-विरति का तात्पर्य है क्रोध आदि आन्तरिक भावों की विशुद्धि का अभ्यास। इसके द्वारा प्रतिक्रिया का स्तर गिरता जाता है।

३. मैत्री

विरोध विक्षेप पैदा करता है। विरोध या शत्रुभाव के विकल्प प्रसन्नता के लिए बाधक बनते हैं। जो प्रसन्न रहना नहीं जानता, वह स्वस्थ भी नहीं रह सकता। स्वस्थ और प्रसन्न जीवन जीने का सूत्र है मैत्री का विकास।

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में मैत्री का अर्थ है–आत्मौपम्य की चेतना का विकास। मैत्री का तात्पर्य कलह, लड़ाई, झगड़ा न करना ही नहीं है, इसका तात्पर्य है–अपनी आत्मा की अनुभूति के साथ प्राणी मात्र की आत्मानुभूति का संयोजन करना।

४. मिताहार

ध्यान की साधना के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। अस्वस्थ व्यक्ति ध्यान के साधारण प्रयोग कर सकता है। विशिष्ट प्रयोग वही कर सकता है जिसका शरीर स्वस्थ होता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जरूरी है आहार का विवेक और आहार का संयम।

कब खाना चाहिए? यह आहार के समय का विवेक है।

क्या खाना चाहिए? यह पाचन शक्ति और शरीर पोषण का विवेक है।

कितना खाना चाहिए? यह भोजन की मात्रा का विवेक है।

कैसे खाना चाहिए? यह भोजन की विधि का विवेक है।

१. भोजन करते समय एकाग्र होकर खाना चाहिए–एकाग्रमना भुञ्जीत।

२. भोजन करते समय प्रसन्न मन होकर खाना चाहिए–प्रसन्नमना भुञ्जीत।

इनमें आहार का संयम अथवा आहार की मात्रा का विवेक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। आहार-संयम का मन और भाव की शुद्धि के साथ भी गहरा संबंध है।

५. मितभाषण

साधक के लिए आवश्यक है वाणी का विवेक। बोलना मनुष्य की विशेषता है। उसका अगला चरण है बोलने का विवेक। साधनाकाल में मौन का बहुत मूल्य है। विस्तार करें तो मौन के तीन आयाम हैं–

१. न बोलना मौन है,

२. कम बोलना भी मौन है और

३. वास्तविक मौन अन्तर्मौन है। यह निर्विकल्प अवस्था में होता है।

कभी नहीं बोलना सम्भव नहीं है। मौन का प्रयोग सावधिक समय में ही हो सकता है।

कम बोलने का तात्पर्य है–अनावश्यक न बोलना। ध्यान के अभ्यास काल में सावधिक मौन का अभ्यास किया जाता है और कम बोलने का भी अभ्यास किया जाता है।

उपसंपदा की जीवन शैली सबके लिए ही उपयोगी है किन्तु ध्यान करने वाले के लिए यह अधिक उपयोगी है।

अर्हम्

अर्हम् शब्द के उच्चारण की ध्वनिगत मीमांसा आवश्यक है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार हमारे शरीर में उच्चारण के आठ स्थान हैं–

१. उर,
२. कंठ,
३. शिर,
४. जिह्वामूल,
५. दंत,
६. नासिका,
७. ओष्ठ,
८. तालु।

'अ' का उच्चारण कंठ से होता है। 'र' का उच्चारण मूर्धा से, 'ह' का उच्चारण कंठ से और 'म्' का उच्चारण होंठ से होता है। 'म्' का उच्चारण करते समय होंठ बंद हो जाते हैं।

अर्हं का उच्चारण

मंत्रशास्त्र के अनुसार अर्हं के उच्चारण में सात मात्राएं होती हैं–

अ–एक मात्रा, र्ह–दो मात्राएं, म्–तीन मात्राएं,

बिन्दु–सूक्ष्म रणकार जैसी ध्वनि–अर्धमात्रा,

नाद–अतिसूक्ष्म ध्वनि.....अर्धमात्रा। कुल सात मात्राएं।

उच्चारण की विधि

१. श्वास संयम करें और अर्हं की पूर्ण एकाग्रता से प्रेक्षा करें। रेचन कर नाभिकेन्द्र में 'अ' का ह्रस्व उच्चारण करें। मन सुषुम्णा में रहे।

२. आनन्दकेन्द्र में 'र्ह' का दीर्घ उच्चारण करें।

३. तालु में 'म्' का उच्चारण करें।

४. दर्शनकेन्द्र में बिन्दु का सूक्ष्म ध्वनि नाद।

५. ज्योतिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र तक नाद–अतिसूक्ष्म नाद।

६. पृष्ठरज्जु सुषुम्णा में श्वास या प्राणधारा का अनुभव करें। शक्तिकेन्द्र से जब प्राणधारा ऊपर जाए तब 'अ' का और वह नीचे जाए तब 'र्ह' का ध्यान करें।

'अ' तैजस शक्ति का स्वरूप है।

'र' अग्नि बीज है। इससे बुरे सस्ंकार न होते हैं।

'ह' आकाश बीज है। चिदाकाश का अनुभव बढ़ता है। 'म्' एक झंकार है। इससे ज्ञानतन्तु सक्रिय होते हैं।

'अर्हं' के सभी वर्ण बहुत शक्तिशाली हैं। इसलिए यह एक शक्तिसंपन्न मंत्र है। आनन्दकेन्द्र में सूर्य जैसे तेजस्वी 'अर्हं' का ध्यान करें, निरंतर उसकी अनुभूति करें। निरंतर अनुभूति से पूरा व्यक्तित्व चैतन्यमय, आनन्दमय और शक्तिमय बन जाएगा।

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें

'**संपिक्खए अप्पगमप्पएणं**'–आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो। मन के स्तर पर होने वाली अवस्थाओं को देखो। भाव के स्तर पर होने वाले आंतरिक परिवर्तन को देखो। स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो।

आत्मा के अनन्त पर्याय हैं। प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में दो पर्याय विशेष उल्लेखनीय हैं–

१. ज्ञान आत्मा और २. कषाय आत्मा।

ज्ञान आत्मा शुद्ध चेतना है। कषाय आत्मा मोहग्रस्त चेतना है। शुद्ध चेतना के द्वारा मोहग्रस्त चेतना को देखना आत्मा से आत्मा को देखने का प्रयोग है। साधक जैसे-जैसे ज्ञान आत्मा के द्वारा कषाय-आत्मा को देखता है वैसे वैसे कषाय-आत्मा का शोधन होता है, उपशम का विकास होता है।

अंगविज्जा में बतलाया गया है कि विचक्षण व्यक्ति को आत्मभाव से आत्मा की परीक्षा करनी चाहिए।[1] परीक्षा के लिए दस पर्याय बतलाए गए हैं–

१. दीनावस्था, २. क्रोधावस्था, ३. हर्ष, ४. प्रसन्नता, ५. आरोग्य, ६. आतुर-अवस्था (रोगावस्था), ७. भूख, ८. तृप्तावस्था, ९. विक्षेप और १०. एकत्व।

इनमें पांच प्रशस्त हैं और पांच अप्रशस्त।

---

१. अंगविज्जा–

अत्तभावेण अत्ताणं, परिक्खेइ वियक्खणो।
दीणयं कुद्धयं चेव, हिट्ठयं च पसण्णयं।
आरोगत्तं आउरत्तं, छायत्तं पीणितत्तणं।
विक्खित्तकं च एकत्तं, दसधा संपधारए।।

पांच प्रशस्त अवस्थाएं—१. हर्ष, २. प्रसन्नता, ३. आरोग्य, ४. तृप्तावस्था और ५. एकत्व।

पांच अप्रशस्त अवस्थाएं—१. दीनावस्था, २. क्रोधावस्था, ३. आतुरावस्था, ४. भूख और ५. विक्षेप।

इनका परीक्षण करना आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। संपिक्खए अप्पगमप्पएणं[1]—इस सूत्र के आधार पर आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का निर्देश दिया जाता है।

---

१. दसवेआलिय, बिइयाचूलिया गा. १२

कायोत्सर्ग

ध्यान के लिए आवश्यक है कायोत्सर्ग का अभ्यास, शरीर को प्रशिक्षित करने का अभ्यास।

कायोत्सर्ग की पांच भूमिकाएं हैं–

१. पहली भूमिका

इसके तीन अंग हैं–

१. शिथिलीकरण–इसके द्वारा शरीर प्रशिक्षित होता है। वह मन की आज्ञा का पालन करता है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम शिथिलीकरण आवश्यक है।

२. सुझाव–शरीर की चंचलता एक साथ समाप्त नहीं होती। चंचलता की स्थिति में शिथिलीकरण नहीं होता। इसलिए शरीर को यह सुझाव देना आवश्यक है कि तुम शिथिल हो जाओ।

३. अनुभव–पूरा शरीर शिथिल हो गया है, यह अनुभव करना।

कायोत्सर्ग की साधना में दो मिनट शरीर का शिथिलीकरण आवश्यक है। दो मिनट सुझाव देना आवश्यक है। एक मिनट शिथिलता का अनुभव करना आवश्यक है।

२. दूसरी भूमिका

इस भूमिका में स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति होती है। इसमें दो तत्त्वों का अनुभव किया जाता है–

१. प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव,

२. प्राण के प्रवाह का अनुभव।

३. तीसरी भूमिका

इस भूमिका में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर गति होती है। इसमें दो

अनुभव किए जाते हैं–

१. लेश्या–भाव के प्रकम्पनों का अनुभव,

२. स्थूल शरीर से तैजस शरीर के भेद का अनुभव।

४. चौथी भूमिका

इस भूमिका में सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम की ओर गति होती है। इसमें कर्मशरीर के स्पन्दनों का अनुभव किया जाता है।

५. पांचवीं भूमिका

१. इस भूमिका में–शरीर और आत्मा के भेद का अनुभव किया जाता है।

२. ममत्व का विसर्जन किया जाता है। यह शरीर मेरा नहीं है, यह अनुभव किया जाता है।

३. शुद्ध चैतन्य का अनुभव किया जाता है।

शरीर की चंचलता की अवस्था में स्थूल का बोध और स्थूल की अनुभूति होती है। आत्मा सूक्ष्म तत्त्व है और उसके प्रकम्पन भी सूक्ष्म हैं। शरीर की स्थिरता और शिथिलता की अवस्था में ही उनका संबोध और अनुभव किया जा सकता है। आत्मा की अनुभूति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है कायोत्सर्ग। इस अवस्था में शरीर, भाषा (वचन) वर्गणा के पुद्‌गलों को भी ग्रहण नहीं करता तथा चिन्तन के निमित्तभूत मनोवर्गणा के पुद्‌गलों को भी ग्रहण नहीं करता। इस अवस्था में निर्विचार मौन और निर्विचार ध्यान सध जाता है।

प्रेक्षाध्यान का आदि बिन्दु है कायोत्सर्ग और अंतिम बिन्दु है कायोत्सर्ग।

अन्तर्यात्रा

हमारे नाड़ी तंत्र के तीन भाग हैं–अनुकंपी, परानुकंपी व केन्द्रीय नाड़ी संस्थान। अनुकंपी और परानुकंपी–दोनों के मध्य है केन्द्रीय नाड़ी संस्थान नाम की एक नाड़ी। उस नाड़ी में चेतना के प्रवेश होने का नाम है–अन्तर्यात्रा।

जीवन चलाना है तो उसके लिए कार्य करना होता है और कार्य करने के लिए उसे बाहर की दुनिया में आना होता है। बाहर आने के दो मार्ग है–१. अनुकम्पी, २. परानुकम्पी। हठयोग की भाषा में इन्हें इड़ा और पिंगला कहा जाता है। जब भीतर रहना होता है तब चेतना इन दोनों प्रवाहों को छोड़कर केन्द्रीय नाड़ी संस्थान में चली जाती है, सुषुम्णा या मेरुदण्ड में चली जाती है। रीढ़ की हड्डी के भीतर रहना अन्तर्यात्रा है और दाएं-बाएं रहना बहिर्यात्रा है।

मध्य नाड़ी का नाम है सुषुम्णा। चेतना का बाह्य जगत् में प्रवेश इड़ा और पिंगला इन दो प्राण-प्रवाहों के माध्यम से होता है। उसका अन्तर्जगत् में प्रवेश सुषुम्णा के माध्यम से होता है। निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि अध्यात्म में प्रवेश करने अथवा अंतर्मुखी बनने का माध्यम है सुषुम्णा का प्राण-प्रवाह।

मन जब बाह्य जगत् की यात्रा करता है तब चंचलता बढ़ती है। वह अन्तर्जगत् की यात्रा करता है, तब उसकी एकाग्रता बढ़ जाती है, वह एक ध्येय में लीन हो जाता है।

सुषुम्णा सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करने का माध्यम है। यह रीढ़ के भीतर स्थित है। यह रीढ़ के निम्न भाग से प्रारम्भ होकर ऊपर तक जाती है। रीढ़ ट्यूब के समान और सुषुम्णा उसमें रही पोल के समान है। इसके जागरण से आन्तरिक ज्ञान और प्रातिभ-ज्ञान का विकास होता है।

इड़ा का प्राण-प्रवाह होता है तब मस्तिष्क का दायां भाग सक्रिय होता है और पिंगला का प्राण-प्रवाह होता है तब मस्तिष्क का बायां भाग सक्रिय होता है। सुषुम्णा का प्राण-प्रवाह होने पर पूरा मस्तिष्क सक्रिय होता है। सुषुम्णा के साथ चैतन्यकेन्द्रों का गहन संबंध है। शक्तिकेन्द्र, स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र इन सब चैतन्यकेन्द्रों का मूल रीढ़ की हड्डी में अवस्थित है। इसलिए अन्तर्यात्रा के साथ प्रत्येक चैतन्यकेन्द्र पर चित्त की यात्रा की जा सकती है।

श्वासप्रेक्षा

जीवन और श्वास का अन्योन्य संबंध है। जहां जीवन है वहां श्वास है। जहां श्वास है वहां जीवन है।

हम नाक से श्वास लेते हैं। कभी श्वास बाएं नथुने से आता है और कभी दाएं नथुने से आता है। स्वरोदय में इन दोनों के कालमान का विशद विवरण है। बाएं से श्वास आता है तो शरीर में ठंडक व्याप्त हो जाती है। दाएं से श्वास आता है तो शरीर में ऊष्मा और सक्रियता का अनुभव होता है। दोनों नथुनों से श्वास आता है तब चित्त शांत हो जाता है।

ऊर्जा या प्राण के आहरण का सशक्त माध्यम है श्वास। वह निरंतर चलता है। प्राण का आहरण भी निरंतर चलता है।

श्वास ऐसा तत्त्व है, जो बाहर से भीतर जाता है और लौटकर भीतर से बाहर आता है। दूसरा ऐसा कोई भी आलम्बन नहीं है, जिसकी गति दोनों दिशाओं में हो।

यदि हम भीतर की यात्रा करना चाहें तो हमारे पास एकमात्र उपाय है कि हम मन को श्वास के रथ पर चढ़ा दें और उसके साथ-साथ भीतर चले जाएं। हमारी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो जाएगी, हम अन्तर्मुखी हो जाएंगे, हम आध्यात्मिक बन जाएंगे। आध्यात्मिक बनने का सरल उपाय है–श्वास के साथ मन को जोड़ देना।

श्वास के प्रकार

श्वास के दो प्रकार होते हैं–

१. सहज श्वास,   २. प्रयत्नजनित श्वास।

प्रयत्न के द्वारा श्वास की गति में परिवर्तन किया जा सकता है–छोटे श्वास को दीर्घ बनाया जा सकता है। साधना में विकास करने के लिए प्राण-शक्ति की प्रचुरता अपेक्षित होती है। प्राण-शक्ति के लिए श्वास

का ईंधन चाहिए। श्वास का ईंधन जितना सशक्त होगा, प्राण-शक्ति उतनी ही सशक्त होगी और प्राण-शक्ति जितनी सशक्त होगी, हमारी साधना उतनी ही सशक्त होगी। श्वास को सशक्त बनाने के लिए ही हम उसे दीर्घ बनाते हैं।

सामान्यतः आदमी एक मिनट में १५-१७ श्वास लेता है। उसके आस-पास दो स्थितियां बनती हैं। एक स्थिति है श्वास की संख्या को बढ़ाने की और दूसरी स्थिति है श्वास की संख्या घटाने की। दूसरे शब्दों में एक स्थिति है श्वास की गति को छोटा करने की और दूसरी स्थिति है श्वास की गति को लम्बा करने की। लंबा श्वास या दीर्घश्वास जीवनी-शक्ति और चेतना के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

श्वास और प्रश्वास

श्वास से प्रश्वास की मात्रा दुगुनी होनी चाहिए। यदि श्वास की चार मात्राएं हैं तो प्रश्वास की आठ मात्राएं होनी चाहिए। श्वास से प्रश्वास को दुगुना या चौगुना करके श्वसन को नियंत्रित किया जा सकता है। इससे मस्तिष्क को विश्राम या शिथिलीकरण प्राप्त होता है क्योंकि श्वास बाहर छोड़ने में किसी भी प्रकार का मांसपेशीय तनाव नहीं पड़ता और हृदय की धड़कन दर इसमें स्वभावतः निम्न रहती है।

इस प्रकार श्वसन के अभ्यास से कालान्तर में मस्तिष्क-तरंगें प्रभावित की जाती हैं, जिससे शरीर के अन्य अंग व प्रणालियां भी प्रभावित होती हैं।

श्वास और मस्तिष्क

श्वास मस्तिष्क की ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं के बीच संपर्क सूत्र स्थापित करता है।

दाएं स्वर का प्रयोग—आक्रामक या श्रमसाध्य कार्य के समय।

बाएं स्वर का प्रयोग—सौम्य-शांत कार्य के समय।

दाएं-बाएं स्वर का मस्तिष्क के दाएं-बाएं गोलार्द्धों के साथ संबंध है।

श्वास प्रक्रिया और मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली में सीधा संबंध है।

श्वास और मस्तिष्क तरंगों का परस्पर संबंध है।

श्वास, भाव और मन की गति के नियम

१. ध्यान में श्वास मंद हो जाता है। यदि श्वास को मंद करें तो ध्यान हो जाता है।

२. श्वास बदलने पर भाव बदल जाता है। भाव बदलने पर श्वास बदल जाता है। क्रोध का भाव उभरता है तब एक प्रकार का श्वास होता है। शान्ति का भाव उभरने पर दूसरे प्रकार का श्वास होता है।

श्वास एक थर्मामीटर है अंतरंग भावों को मापने का। श्वास के प्रति जागरूक रहने वाला अंतरंग में उभरने वाले भाव के प्रति सहज ही जागरूक हो जाता है। वह उभरते भाव को बदल सकता है।

३. श्वास एक प्राण-शक्ति है। प्राण-शक्ति चेतना से जुड़ी हुई है। इसलिए श्वास को देखने का अर्थ है श्वास के साथ जुड़ी हुई प्राणधारा का अनुभव करना और प्राणधारा के अनुभव का अर्थ है उसकी आधारभूत चेतना का अनुभव करना।

४. श्वास को देखने से 'मैं कौन हूं? यह उलझा प्रश्न सुलझता है। श्वास दर्शन के लंबे अभ्यास से प्राण और चैतन्य का स्पष्ट अनुभव हो जाता है।

५. दीर्घश्वास और सहज श्वास दो नहीं हैं। वास्तव में दीर्घश्वास ही सहज श्वास है। केवल छाती फूले वह सहज श्वास नहीं है। पेट फूले और सिकुड़े वही सहज श्वास है, वही दीर्घश्वास है।

आवेश और श्वास

आवेश की स्थिति में श्वास की संख्या बढ़ जाती है। श्वास छोटा होता है तो आवेश की अधिक संभावना रहती है। इसे सूत्र की भाषा में कहा जा सकता है–श्वास छोटा होता है तो आवेश आता है अथवा आवेश की स्थिति श्वास को छोटा बना देती है।

मन की एकाग्रता के लिए आवश्यक है श्वास की गति का परिवर्तन।

श्वास और हृदय

प्रत्येक श्वास के पीछे हृदय चार बार धड़कता है। छोटे श्वास से हृदय को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। फलस्वरूप हृदय की गति

अव्यवस्थित और विकृत हो जाती है। पूर्ण फुफ्फुस का उपयोग नहीं होता, इसलिए वह भी रुग्ण हो जाता है। फुफ्फुस का जो भाग उपयोग में आता है, कार्याधिक्य के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है।

लम्बा श्वास या दीर्घश्वास जीवनी-शक्ति और चेतना के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

शरीरप्रेक्षा

प्राणी जगत् के पास प्रवृत्ति के तीन साधन हैं—१. शरीर, २. वचन और ३. मन। इन तीनों में शरीर का महत्त्व सर्वाधिक है। शरीर के बिना न वाणी हो सकती और न मन हो सकता।

हमारे ज्ञान का प्रथम स्रोत है इन्द्रियां। वे पांच हैं—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय। इन सबकी अवस्थिति शरीर में है।

मनुष्य का व्यवहार वचन से चलता है। वचन की उत्पत्ति शरीर के माध्यम से होती है। शरीर में पर्याप्ति-तंत्र है। उसका एक केन्द्र है—भाषा-पर्याप्ति। इसके द्वारा भाषा के योग्य परमाणु पुद्गलों का ग्रहण होता है। दूसरे चरण में उनका वचन के रूप में परिणमन होता है। तीसरे चरण में उनका विसर्जन होता है, विस्फोट होता है। उस क्षण का नाम है वचन। वचन की प्रक्रिया शरीर के माध्यम से संपन्न होती है इसलिए वह शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं है।

मन की प्रक्रिया भी शरीर के द्वारा संपादित होती है। पर्याप्ति-तंत्र का एक तंत्र है मनःपर्याप्ति। इसके द्वारा चिन्तन-योग्य परमाणु पुद्गलों का ग्रहण होता है। दूसरे चरण में उनका मन के रूप में परिणमन होता है। तीसरे चरण में उनका विसर्जन होता है, विस्फोट होता है। उस क्षण का नाम है—मन। मन की प्रक्रिया शरीर के माध्यम से संपन्न होती है इसलिए वह शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं है।

वचन और मन की प्रक्रिया के आधार पर कहा जा सकता है कि वचन और मन की उत्पत्ति मनुष्य की इच्छा के अधीन है। वचन स्थाई तत्त्व नहीं है। मनुष्य जब बोलना चाहता है तब वचन की प्रक्रिया शुरू होती है और वचन व्यक्त हो जाता है। बोलने से पहले वचन नहीं होता,

बोलते समय वचन होता है। वचन का समय व्यतिक्रांत होने पर वचन नहीं होता।[1]

मन भी स्थाई तत्त्व नहीं है। मनुष्य जब चिन्तन करना चाहता है तब मन की प्रक्रिया शुरू होती है और मन व्यक्त हो जाता है। पहले मन नहीं होता, मनन के समय मन होता है, मनन का समय व्यतिक्रांत होने पर मन नहीं होता।[2]

श्वास का ग्रहण, वचन और चिन्तन–ये सब शरीर के माध्यम से होते हैं। श्वास की गति स्वाभाविक है। श्वास-पर्याप्ति के द्वारा श्वास के परमाणु पुद्‌गलों का ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन होता है। श्वास का क्रम निरंतर चलता है। कुंभक अथवा श्वास-संयम के समय सूक्ष्म श्वास की क्रिया चालू रहती है।

शरीर श्वास, वचन और मन की प्रवृत्ति का आधार है। इन सबकी प्रवृत्ति का निरोध करने के लिए शरीर की चंचलता का निरोध करना आवश्यक है। शरीर की प्रवृत्ति के निरोध का प्रयोग है कायोत्सर्ग, काय-गुप्ति और काय-प्रतिसंलीनता।

शरीर की चंचलता की स्थिति में मन की चंचलता भी कम नहीं होती, सम्यक् एकाग्रता भी नहीं होती।

शरीर की चंचलता की स्थिति में वचन की चंचलता भी कम नहीं होती, सम्यक् मौन भी नहीं होता।

शरीर की चंचलता की स्थिति में श्वास का निरोध नहीं होता, सम्यक् श्वास भी नहीं होता।

प्रेक्षाध्यान के दर्शन में मन से अधिक महत्त्व शरीर का है। मन ही मनुष्य के बंध और मोक्ष का कारण है, यह अवधारणा सापेक्ष है। मन की चंचलता ध्यान में बाधक है, इस दृष्टि से यह सिद्धान्त निश्चित किया गया

---

१. भगवई शतक १३.१२५–पुव्विं भंते! भासा? भासिज्जमाणी भासा? भासासमयवीतिक्कंता भासा?
   गोयमा! णो पुव्विं भासा, भासिज्जमाणी भासा, णो भासासमयवीतिक्कंता भासा।

२. भगवई शतक १३.१२६–पुव्विं भंते! मणे? मणिज्जमाणे मणे? मणसमय-वीतिक्कंते मणे?
   गोयमा! नो पुव्विं मणे? मणिज्जमाणे मणे, नो मणसमयवीतिक्कंते मणे।

है। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो एकाग्रता और ध्यान की सिद्धि में शरीर की चंचलता अधिक बाधक है। इसलिए ध्यान की साधना करने वाले व्यक्ति को शरीर के रहस्यों को जानने के लिए अधिक केन्द्रित होना चाहिए। उसके रहस्यों को जान लेने पर वचन और मन के रहस्य स्वयमेव जान लिए जाते हैं।

शरीर के प्रकार

शरीर के पांच प्रकार हैं–

१. औदारिक शरीर–स्थूल शरीर, जो स्थूल परमाणु-पुद्‌गलों से निष्पन्न होता है। इसमें सात धातुएं होती हैं–१. रस, २. रक्त, ३. मांस, ४. मेद, ५. अस्थि, ६. मज्जा और ७. शुक्र।

२. वैक्रिय शरीर–यह शरीर सूक्ष्म परमाणु-पुद्‌गलों से निर्मित होता है। इसमें रस, रक्त आदि धातुएं नहीं होती। इसमें परिवर्तन की शक्ति होती है।

३. आहारक शरीर–यह लब्धिधारक मुनियों द्वारा निर्मित होता है। इसके द्वारा दूरवर्ती व्यक्तियों से संपर्क किया जा सकता है, प्रश्नों का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

४. तैजस शरीर–यह विद्युत्‌मय शरीर है। इसकी सूक्ष्म ऊर्जा से पाचन होता है, दीप्ति होती है और भावतंत्र का निर्माण होता है। यह सूक्ष्म शरीर है। स्थूल शरीर और सूक्ष्मतम शरीर के मध्य सेतु का कार्य करता है।

५. कर्म (कार्मण) शरीर–यह सूक्ष्मतम शरीर है। यह कर्म के परमाणु-पुद्‌गलों द्वारा निर्मित होता है। इसमें अवस्थित कर्म के परमाणु-पुद्‌गलों द्वारा आत्मा प्रभावित होती है।

प्रेक्षाध्यान की साधना में दो शरीर उपयोगी हैं–१. औदारिक शरीर, २. तैजस शरीर।

आसन, प्राणायाम, जप, आहार-संयम, उपवास, कायोत्सर्ग, श्वास-संयम, ध्यान आदि के द्वारा औदारिक शरीर के क्रियाचक्र में परिवर्तन किया जा सकता है।

चिन्तन, अनुप्रेक्षा, शुभविषयक एकाग्रता, चैतन्यकेन्द्र, लेश्याध्यान आदि के द्वारा कर्मशरीर के प्रकम्पन, जो तैजस शरीर की ऊर्जा से मनुष्य के मस्तिष्क तक पहुंचते हैं, उनमें परिवर्तन किया जा सकता है, लेश्या का परिवर्तन किया जा सकता है।

शरीर और प्राण

औदारिक शरीर में छह पर्याप्तियां हैं। वे सब तैजस शरीर के संवादी-केन्द्र हैं। उनके माध्यम से प्राण के परमाणुओं का आकर्षण, परिणमन और उत्सर्जन होता रहता है। उनका रेखांकन इस प्रकार है–

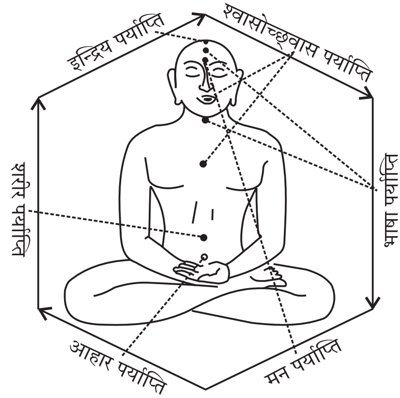

पर्याप्तियां शक्तिस्रोत हैं और प्राण शक्तिकेन्द्र हैं। इनमें परस्पर कार्य-कारण का भाव प्रतीत होता है। शक्तिस्रोत कारण हैं और शक्तिकेन्द्र उनके कार्य हैं।

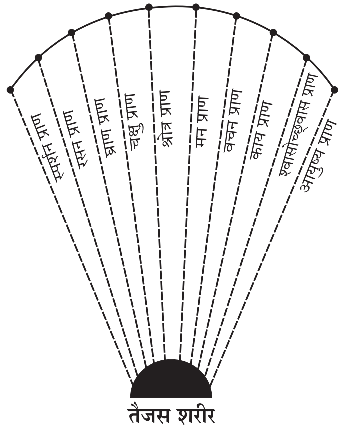

संख्या-विस्तार को संक्षेप में लाने पर दोनों की संख्या समान हो जाती है।

शक्तिस्रोत	**शक्तिकेन्द्र**
आहार पर्याप्ति	आयुष्य प्राण
शरीर पर्याप्ति	कायबल प्राण
इन्द्रिय पर्याप्ति	इन्द्रिय प्राण
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	श्वासोच्छ्वास प्राण
भाषा पर्याप्ति	वचनबल प्राण
मनःपर्याप्ति	मनोबल प्राण

ये शक्तिस्रोत और शक्तिकेन्द्र ही जीव और निर्जीव तत्त्व के बीच व्यावर्तक भेद डालने वाले हैं। जिनमें आहार करने, शरीर रचना करने, इन्द्रिय रचना करने व श्वास लेने की शक्ति है, वे जीव हैं और जिनमें ये शक्तियां नहीं है, वे निर्जीव हैं।

भाषा-शक्ति व चिन्तन-शक्ति जीव के लक्षण नहीं हैं किन्तु वे विकास के अग्रिम सोपान हैं।

ये शक्ति-स्रोत जीवन के आरम्भ काल में ही निष्पन्न हो जाते हैं। इनकी क्रियाशीलता ही प्राणी का जीवन है।

प्राण स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर के बीच संबंध सूत्र है। वह स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर से जोड़ता है। श्वास का संबध स्थूल शरीर से है, उसका वाहक तंत्र है—श्वसनतंत्र। श्वास-प्राण की उत्पत्ति तैजस शरीर से होती है। वह सूक्ष्म है इसलिए यन्त्रों के द्वारा ग्राह्य नहीं है।

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा

शरीर और आत्मा

आत्मा स्वभाव से अमूर्त है। वह शरीर के माध्यम से मूर्तवत् बन जाता है। वह अव्यक्त है। उसकी अभिव्यक्ति शरीर के माध्यम से होती है। हमारे शरीर का मुख्य भाग है नाड़ी संस्थान। वह आत्मा के आवास का मुख्य क्षेत्र है। उसके माध्यम से आत्मा की चेष्टाएं अभिव्यक्त होती हैं। जिस क्षेत्र में चेतना के प्रदेश, चैतन्यमय परमाणु अधिक परिमाण में एकत्र होते हैं, वह क्षेत्र चैतन्यकेन्द्र बन जाता है।[१]

मनुष्य के शरीर में अनेक चैतन्य केन्द्र हैं। साधना के द्वारा उनसे ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलती है और उनके आधार पर मनुष्यों को ज्ञान उपलब्ध होता है।

मनुष्य का नाड़ी संस्थान जितना शक्तिशाली है उतना किसी प्राणी का नहीं है। उसके नाड़ी संस्थान में दो विशेष प्रकार की शक्तियां हैं—

१. ज्ञान की शक्ति,

२. कार्य की शक्ति।

मनुष्य के ज्ञानवाही तन्तु बहुत शक्तिशाली हैं। उनके द्वारा वह विशाल ज्ञान उपलब्ध कर सकता है, इन्द्रिय ज्ञान की पटुता प्राप्त कर सकता है और अतींद्रिय-चेतना का अवतरण भी कर सकता है। इन्द्रिय-ज्ञान की सीमा को लांघकर सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान कर सकता है।

चैतन्यकेन्द्र और मर्म

मनुष्य के शरीर में १०७ मर्म स्थान हैं। जिस स्थान में आत्मा के प्रदेश समुदित होकर रहते हैं, उस स्थान का नाम है मर्म। चैतन्यकेन्द्र और मर्म स्थान दोनों की व्याख्या समान है इसलिए इन दोनों को एक माना

१. स्याद्वादमंजरी पृ. ७७—बहुभिरात्मप्रदेशैरधिष्ठिता देहावयवा मर्माणि।

जा सकता है। आयुर्वेद में मर्मस्थान का विस्तृत वर्णन है। उसके अनुसार मर्मस्थान प्राण के केन्द्र हैं।

मर्माणि नाम मांसशिरास्नायु अस्थिसंधिसंनिपातः।
तेषु स्वभावत एव विशेषेण प्राणाः तिष्ठन्ति॥[1]

शरीर में जहां भी मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि—इनका सन्निपात—संगम होता है, वही मर्मस्थान कहलाता है। शरीर में स्थित प्राण इन्हीं मर्मस्थानों में रहते हैं।

मांसास्थि स्नायुधमनी शिरा संधिसमागमः।
स्यान्मर्मेति च तेनात्र सुतरं जीवितं स्थितम्॥[2]

मांस आदि इन छह रचनाओं का सन्निपात जहां होता है, उस स्थान को मर्मस्थान कहते हैं।

तेषु स्वभावतः एव विशेषेण प्राणाः तिष्ठन्ति।[3]

वहां स्वभाव से ही प्राण विशेष रूप से प्रतिष्ठित रहते हैं।

आयुर्विज्ञान (Medical Science) के अनुसार हमारे शरीर में अनेक ग्रन्थियां हैं। योग के आचार्यों ने उन्हें चक्र कहा है।

क्यूसोस, ग्लैण्ड्स और चक्र

जापान में प्रचलित बौद्ध पद्धति 'जूडो' में उन्हें क्यूसोस (Kyushos) कहते हैं। यह एक आश्चर्यकारी बात है—आज के शरीरशास्त्रियों ने ग्लैण्ड्स के जो स्थान और आकार माने हैं—योग के आचार्यों ने चक्र के जो स्थान और आकार निर्दिष्ट किए हैं और जूडो पद्धति में क्यूसोस के जो स्थान और आकार माने हैं, वे तीनों समान हैं, उनमें विशेष अन्तर नहीं है। तीनों की धारणा समान है।

क्र.सं.	जूडो क्यूसोस	ग्लैण्ड्स	चक्र
१.	टेन्डो (Tendo)	पीनियल	सहस्रार चक्र
२.	उतो (Uto)	पिच्यूटरी ग्लैण्ड	आज्ञा चक्र

१. सुश्रुतशारीरम् ६
२. आंगहृदयशारीरम् ४.३८
३. सुश्रुतशारीरम् ६.१५

३.	हिचू (Hichu)	थायराइड ग्लैण्ड	विशुद्धि चक्र
४.	क्योटोट्सु (Kyototsu)	थाइमस ग्लैण्ड	अनाहत चक्र
५.	सुइगेट्स (Suigetsu)	एड्रिनल ग्लैण्ड	मणिपूर चक्र
६.	माइओजो (Myojo)	गोनाड्स	स्वाधिष्ठान चक्र
७.	सुरगिने (Tsurigane)	गोनाड्स	मूलाधार चक्र

प्रेक्षाध्यान साधना की पद्धति के चैतन्य केन्द्र उक्त क्यूसोस, ग्लैण्ड्स और चक्रों से तुलनीय हैं।

चैतन्य केन्द्र की श्रृंखला में निम्नलिखित तेरह केन्द्र हैं, जिनके स्थान अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के साथ सम्बन्धित हैं–

क्र.स.	**नाम**	**किस ग्रन्थि से संबंध**	**स्थान**
१.	शक्तिकेन्द्र	गोनाड्स (कामग्रंथि)	पृष्ठ-रज्जु के नीचे के छोर पर
२.	स्वास्थ्यकेन्द्र	गोनाड्स (कामग्रंथि)	पेडू; नाभि से चार अंगुल नीचे
३.	तैजसकेन्द्र	एड्रीनल, पेन्क्रियाज	नाभि
४.	आनन्दकेन्द्र	थायमस	हृदय के मध्य
५.	विशुद्धिकेन्द्र	थायराइड, पेराथायराइड	कण्ठ के मध्य
६.	ब्रह्मकेन्द्र	रसनेन्द्रिय	जिह्वाग्र
७.	प्राणकेन्द्र	घ्राणेन्द्रिय	नासाग्र
८.	चाक्षुषकेन्द्र	चक्षुरिन्द्रिय	आंखों के भीतर
९.	अप्रमादकेन्द्र	श्रोत्रेन्द्रिय	कानों के भीतर
१०.	दर्शनकेन्द्र	पिच्यूटरी (पीयूष)	भृकुटियों के मध्य
११.	ज्योतिकेन्द्र	पीनियल	ललाट के मध्य
१२.	शांतिकेन्द्र	हाइपोथेलेमस	मस्तिष्क का अग्र भाग
१३.	ज्ञानकेन्द्र	बृहन्मस्तिष्क	सिर के ऊपर का भाग

लेश्याध्यान

चिन्तन, भाव और कार्य शुभ और अशुभ दोनों तरह के होते हैं। ये बदलते रहते हैं।

चिन्तन कभी शुभ होता है, कभी अशुभ। वह एकरूप नहीं रहता, बदलता रहता है।

भाव कभी शुभ होता है, कभी अशुभ। वह एकरूप नहीं रहता, बदलता रहता है।

कार्य कभी शुभ होता है, कभी अशुभ। वह एकरूप नहीं रहता, बदलता रहता है।

ऐसा क्यों होता है? उत्तर है लेश्या का परिवर्तन।

चेतना के स्पन्दन तथा कर्मशरीर के स्पन्दन शुभ होते हैं तो लेश्या शुभ होती है और उसके कारण चिंतन, भाव और कार्य–ये तीनों शुभ हो जाते हैं। लेश्या के स्पंदन रंगीन होते हैं।

रंग और भाव का घनिष्ठ संबंध है। रंग दो प्रकार के होते हैं– १. प्रशस्त, २. अप्रशस्त।

प्रशस्त रंग प्रकाशमय होते हैं। अप्रशस्त रंग अंधकारमय होते हैं। प्रशस्त रंग शुभ लेश्या के साधक बनते हैं। अप्रशस्त रंग अशुभ लेश्या के साधक बनते हैं।

क्र.सं.	**रंग**	**प्रशस्त का प्रभाव**	**अप्रशस्त का प्रभाव**
१.	काला– गहरे काले बादल जैसा	शांति	नृशंसता, लालच

क्र.सं.	रंग	प्रशस्त का प्रभाव	अप्रशस्त का प्रभाव
२.	नीला	क्षमा	साहस की मनोवृत्ति, बिना सोचे-समझे काम करने की मनोवृत्ति, हिंसा से विरत न होने की मनोवृत्ति।
३.	पीला	आध्यात्मिक विकास की आकांक्षा, क्रोध-आदि की अल्पता	स्वार्थ, लोभ
४.	कापोती– कबूतर की ग्रीवा जैसा	आसक्ति का विवेक	
५.	लाल	सत्यनिष्ठा, विनम्रता	विषय लोलुपता
६.	श्वेत	चित्त की प्रशान्त वृत्ति, दृढ़निश्चय	अहंकार

मनुष्य का शरीर पौद्‌गलिक है, परमाणु-पुद्‌गलों से निष्पन्न है। उसमें आत्मा है। वह स्वरूपतः अपौद्‌गलिक है, अभौतिक है। किन्तु वह सूक्ष्मतम शरीर, कर्मशरीर से प्रभावित होता है। इसलिए वह सर्वथा अपौद्‌गलिक नहीं है।

लेश्या में चेतना की रश्मियां और तैजस शरीर की रश्मियां–इन दोनों का योग होता है। इसलिए वह चैतन्यमय भी है और पौद्‌गलिक भी है। चैतन्यमय लेश्या के लिए भावलेश्या और पौद्‌गलिक लेश्या के लिए द्रव्यलेश्या का प्रयोग किया जाता है। भावलेश्या का कोई रंग नहीं है। द्रव्यलेश्या के अनेक रूप हैं, अनेक रंग हैं। द्रव्यलेश्या के प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार के रंग चित्त को प्रभावित करते हैं। यदि चित्त बलवान होता है तो वह रंगों में परिवर्तन भी कर देता है। बाहर के रंग भी अपना प्रभाव डालते हैं, उनसे भी चित्त-वृत्तियां प्रभावित हो जाती हैं।

प्रेक्षाध्यान का परिकर

प्रेक्षाध्यान की पद्धति में आसन, प्राणायाम, अनुप्रेक्षा, जप और भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१. आसन

पद्मासन, अर्द्ध-पद्मासन, सुखासन और वज्रासन–ये ध्यानासन हैं। ध्यान के समय इन आसनों में बैठना अधिक उपयोगी है।

ध्यान और स्वास्थ्य के संबंध को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वस्थ व्यक्ति ध्यान की साधना में बहुत शीघ्र आगे बढ़ सकता है। ध्यान का पाचनतंत्र पर प्रभाव होता है, अग्नि मंद होती है। आसन के अभ्यास द्वारा उस समस्या का निराकरण किया जा सकता है।

पाचनतंत्र, रक्त-परिसंचरण तंत्र आदि व्यवस्थित होते हैं तभी ध्यान में मन एकाग्र हो सकता है। आसन के द्वारा उन्हें व्यवस्थित किया जा सकता है।

आसन के अभ्यास से ग्रंथि-तंत्र प्रभावित होता है तथा विभिन्न चैतन्यकेन्द्र जागृत होते हैं। इससे वृत्तियों में भी परिवर्तन होता है। उदाहरणस्वरूप, क्रोध की वृत्ति को अनुशासित करने के लिए शशांकासन आवश्यक है। सर्वांगासन की भी वृत्ति रूपान्तरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

वर्तमान शारीरिक स्थिति का ध्यान रखकर हमें आसनों का चयन करना चाहिए। कठोर आसनों की वर्जना बहुत आवश्यक है।

२. प्राणायाम

फुफ्फुस को शक्तिशाली बनाए रखने के लिए प्राणायाम आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान की साधना में भस्त्रिका जैसे तीव्र प्राणायाम की वर्जना अपेक्षित है।

३. अनुप्रेक्षा

अनुप्रेक्षा का तात्पर्य है–

१. चेतना के रूपान्तरण के लिए किया जानेवाला मानसिक अभ्यास।

२. पुरानी आदतों को बदलने के लिए और नई आदतों के प्रत्यारोपण के लिए किया जानेवाला मानसिक अभ्यास।

सत्य को जानना ज्ञान है और सत्य को आत्मसात् करना साधना है। अनुप्रेक्षा के द्वारा अधिगत सत्य को आत्मसात् किया जाता है। जैसे अग्नि लोह के कण-कण में प्रविष्ट होकर लोह को अग्निमय बना देती है वैसे ही ज्ञात सत्य को मानसिक अभ्यास के द्वारा चित्त में प्रविष्ट कर व तद्रूप परिणत कर उसे आत्मसात् किया जा सकता है।[1]

जो ज्ञान अस्थि, मज्जा तक पहुंच जाता है वह संस्कारगत बन जाता है। अनुप्रेक्षा संस्कार निर्माण की साधना है।[2]

स्थूल चेतना द्वारा जो ज्ञात होता है। वह ज्ञान की कक्षा में चला जाता है। वह मानसिक अभ्यास परावर्तन, अनुगुंजन के द्वारा सूक्ष्म चेतना तक पहुंचता है तब वह ज्ञान आत्मगत बन जाता है, आचरणगत बन जाता है।

तत्त्वार्थसूत्र में १२ अनुप्रेक्षाओं का उल्लेख है[3]–

१. अनित्य, २. अशरण,
३. संसार, ४. एकत्व,
५. अन्यत्व, ६. अशुचि,
७. आश्रव, ८. संवर,
९. निर्जरा, १०. लोक,
११. बोधिदुर्लभ, १२. स्वाख्यात धर्म।

---

१. चारित्रसार, पृसं. ६७–अधिगतपदार्थप्रक्रियस्य तप्तायःपिण्डवदर्पितचेतसः मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा।

२. धवला पृसं. २६३–कम्मणिज्जरणट्ठमट्ठिमज्जाणुगयस्स सुदणाणस्स परिमलणमणुपेक्खणा णाम।

३. तत्वार्थसूत्र ९.७–अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्याश्रवसंवरनिर्जरा-लोकबोधिदुर्लभधर्मस्वारूयातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षा।

अनु का अर्थ है पुनः-पुनः, प्रेक्षण का अर्थ है चिन्तन और स्मरण। वस्तु अनित्य है। यह सामान्य बोध है, सब जानते हैं। इसके साथ मेरा संबंध है वह अनित्य है, प्रमादवश इसकी स्मृति नहीं रहती। व्यवहार काल में मनुष्य यह भूल जाता है कि यह संबंध अनित्य है। अनुप्रेक्षा के द्वारा मानसिक अभ्यास, उसकी अनित्यता का बार-बार चिन्तन, स्मरण और अनुशीलन किया जाता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा गृहीत अथवा संकलित विषय में चित्त को स्तिमित करना–उस विषय के जल से चित्त को भिगो देना संभव हो जाता है।

प्रेक्षाध्यान में चेतना के ऊर्ध्वारोहण की दृष्टि से हमने अनुप्रेक्षाओं के अनेक नए प्रयोग निश्चित किए हैं–

१. कर्तव्यनिष्ठा,
२. स्वावलम्बन,
३. सत्य,
४. समन्वय,
५. संप्रदाय-निरपेक्षता,
६. मानवीय एकता,
७. अध्यात्म और विज्ञान,
८. मानसिक संतुलन,
९. धैर्य,
१०. प्रामाणिकता,
११. ऋजुता,
१२. सह-अस्तित्व,
१३. अनासक्ति,
१४. सहिष्णुता,
१५. मृदुता,
१६. अभय,
१७. आत्मानुशासन।

४. भावना

आगम साहित्य में धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान की चार-चार अनुप्रेक्षाएं बतलाई गई हैं–

• धर्म्यध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं[1]–

१. एकत्व-अनुप्रेक्षा–अकेलेपन का चिन्तन करना।

२. अनित्य-अनुप्रेक्षा–पदार्थों की अनित्यता का चिन्तन करना।

१. ठाणं ४.६८–धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा।

३. अशरण-अनुप्रेक्षा–अशरण दशा का चिन्तन करना।

४. संसार-अनुप्रेक्षा–संसार परिभ्रमण का चिन्तन करना।

शुक्लध्यान की चार-अनुप्रेक्षाएं[1]–

१. अनन्तवृत्तिता-अनुप्रेक्षा–संसार परम्परा का चिन्तन करना।

२. विपरिणाम-अनुप्रेक्षा–वस्तुओं के विविध परिणामों का चिन्तन करना।

३. अशुभ-अनुप्रेक्षा–पदार्थों की अशुभता का चिन्तन करना।

४. अपाय-अनुप्रेक्षा–दोषों का चिन्तन करना।

जिनभद्रगणी के अनुसार चार भावनाओं का अभ्यास करने वाले व्यक्ति में ध्यान की अर्हता पैदा होती है[2]–

१. ज्ञान भावना, २. दर्शन भावना,

३. चारित्र भावना, ४. वैराग्य भावना।

भावना का अर्थ है भाव्य-विषय से अपने आपको भावित, वासित अथवा सम्मोहित कर लेना।

भावना और अनुप्रेक्षा दोनों एकार्थक हैं। इन पर विमर्श करना आवश्यक है–

अनुप्रेक्षा का मूल तत्त्व है–प्रेक्षण के द्वारा लक्ष्य के अनुरूप चित्त का निर्माण करना।

भावना का मूल तत्त्व है–भाव्य के अनुरूप चित्त का निर्माण करना, जो हम होना चाहते हैं, वैसे चित्त का निर्माण करना।

तात्पर्य की दृष्टि से विचार करें तो दोनों बहुत निकट आ जाती हैं। प्रक्रिया भी दोनों की भिन्न नहीं है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग में मानस-अभ्यास की अनिवार्यता है और भावना के प्रयोग में मानस-अभ्यास की अनिवार्यता नहीं है, वाचिक अभ्यास भी मान्य है। अनुप्रेक्षा के साथ चारित्र और तप

---

१. ठाणं ४.७२–सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–अणंतवत्तियाणुप्पेहा, विप्परिमाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा।

२. ध्यानशतक गा ३०– पुव्वकयब्भासो भावणाहिं झाणस्स जोग्गयमुवेइ।
ताओ य नाणदंसणचरित्तवेरग्ग नियताओ।।

से चित्त को भावित करने की बात नहीं है। भावना में शरीर और मन को तप के अनुरूप निर्मित करने की योजना की जाती है।

भावना को समझने के लिए आयुर्वेद की औषध-निर्माण की प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है, जैसे औषधियों के निर्माण में गिलोय की भावना दी जाती है, नीबू की भावना दी जाती है। जिन घटक द्रव्यों से औषध तैयार की जाती है, उनमें जिस द्रव्य की भावना दी जाती है उस द्रव्य के गुण समाविष्ट हो जाते हैं।

चेतना के रूपान्तरण के लिए प्रतिपक्ष भावना का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। कषाय (क्रोध, अहंकार, माया और लोभ) का प्रतिपक्ष भावना से निवर्तन होता है।[१]

क्रोध का प्रतिपक्ष है उपशम। इसकी भावना से चित्त को भावित करने पर क्रोध की निवृत्ति होती है।

अहंकार का प्रतिपक्ष है मृदुता। इसकी भावना से चित्त को भावित करने पर अहंकार की निवृत्ति होती है।

माया का प्रतिपक्ष है ऋजुता। इसकी भावना से चित्त को भावित करने पर माया की निवृत्ति होती है।

लोभ का प्रतिपक्ष है संतोष। इसकी भावना से चित्त को भावित करने पर लोभ की निवृत्ति होती है।

कामवासना का भी विपरीत भावना से निवर्तन हो जाता है।

५. जप

ध्यान का लेश्या के साथ गहरा संबंध है। ध्यान कराने वाले व्यक्ति को, जिसे ध्यान करा रहे हैं, उसका आभामण्डल देखना चाहिए।

कृष्णलेश्या प्रधान व्यक्ति का स्वभाव आर्त (मनोव्यथा) होता है। उसका मन एकाग्र नहीं हो सकता। वह ध्यान में नींद लेता रहता है इसलिए उसे भजन (जप) का प्रयोग कराना चाहिए।

नील लेश्या और कापोतलेश्या प्रधान व्यक्तियों का मन चंचल होता

---

१. दशवैकालिक ८.३८– उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जवभावेण, लोभं संतोषओ जिणे।।

है। उनमें ध्यान की योग्यता नहीं होती। इसलिए उन्हें वाचिक जप का प्रयोग कराना चाहिए।

तेजोलेश्या प्रधान व्यक्ति अचपल होता है, वह मन को एकाग्र कर सकता है। ध्यान की अर्हता इसी भूमिका से शुरू होती है।

पद्मलेश्या प्रधान व्यक्ति प्रशांत होता है। वह निर्विकल्प ध्यान का प्रयोग कर सकता है।

शुक्ललेश्या प्रधान व्यक्ति उपशांत होता है। वह व्यक्ति दीर्घकाल तक निर्विकल्प अवस्था में रह सकता है।

जप वाचिक और मानसिक, दोनों प्रकार का होता है। वाचिक जप उच्च स्वर तथा मंद स्वर से बोलकर किया जाता है। मानसिक जप में शब्द का उच्चारण नहीं होता, इसे मानसिक ध्यान की कोटि में रखा जा सकता है।

प्रेक्षा योग

योग, साधना की विशिष्ट पद्धति है। इसका संबंध लगभग सभी धर्मों के साथ रहा है। इस विषय में सभी आचार्यों ने ग्रंथों की रचना की है। महर्षि पतंजलि का योगदर्शन योग का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। वर्तमान में योग के दो अंग–आसन और प्राणायाम प्रमुख बने हुए हैं। धारणा, ध्यान और समाधि गौण हैं।

प्रेक्षाध्यान ध्यान की पद्धति है। इसमें ध्यान प्रमुख है, आसन और प्राणायाम गौण।

प्रेक्षाध्यान को समझने के लिए साधन, साध्य और साधना का विश्लेषण करना आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान का साध्य है चित्त-शुद्धि, यह पहले बताया जा चुका है। चित्त-शुद्धि का साधन है राग-द्वेष मुक्त क्षण में रहने का अभ्यास। उसके लिए आवश्यक है एकाग्रता।

प्रेक्षाध्यान की दो भूमिकाएं हैं–

१. सालम्बन ध्यान की भूमिका,

२. निरालम्बन ध्यान की भूमिका।

एकाग्रता की साधना के लिए श्वासप्रेक्षा, शरीरप्रेक्षा, चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा आदि का आलम्बन लिया जाता है। सालम्बन ध्यान सविचार और सविकल्प होता है।

निरालम्बन ध्यान में कोई आलम्बन नहीं लिया जाता, इसलिए वह निर्विचार और निर्विकल्प होता है।

सालम्बन ध्यान में मन की एकाग्रता सिद्ध होती है। निरालम्बन ध्यान मन के परे का ध्यान है।

योग की समग्रता पर विचार करें, उस स्थिति में आसन, प्राणायाम से लेकर समाधि तक के सारे प्रयोग योग हैं।

जैन दृष्टि से विचार करने पर योग के दो अंग बनते हैं–

१. बाह्य योग, २. आभ्यन्तर योग।

बाह्य योग के तीन अंग हैं–१. आहार-संयम, २. आसन, प्राणायाम और कायोत्सर्ग तथा ३. इन्द्रिय संयम–प्रतिसंलीनता।

आभ्यन्तर योग के तीन अंग हैं–१. सालम्बन ध्यान, २. निरालम्बन ध्यान और ३. ममत्व विसर्जन।

प्रेक्षाध्यान : प्रायोगिक स्वरूप

प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति

शारीरिक समस्याएं बहुत हैं, मानसिक समस्याएं उससे अधिक हैं और भावात्मक समस्याएं उनसे भी कहीं अधिक हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जितनी समस्याएं, उनको सुलझाने के लिए उतने ही प्रयोग। किन्तु शिविर साधना में निम्नलिखित सात प्रयोग करणीय हैं। अपेक्षानुसार इन प्रयोगों की संख्या बढ़ाई जा सकती है–

१. कायोत्सर्ग,

२. अन्तर्यात्रा,

३. श्वासप्रेक्षा,

४. शरीरप्रेक्षा,

५. चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा,

६. लेश्याध्यान,

७. ज्योतिकेन्द्र-प्रेक्षा।

प्रेक्षाध्यान

ध्यान की पूर्व तैयारी

ध्यानासन

जिस आसन में आप लम्बे समय तक सुविधापूर्वक स्थिरता से बैठ सकें, उस ध्यानासन का चुनाव करें। जैसे—पद्मासन, अर्धपद्मासन, सुखासन या वज्रासन।

मुद्रा

वीतराग-मुद्रा

दोनों हथेलियों को नाभि के नीचे स्थापित करें। बायीं हथेली नीचे और दायीं हथेली ऊपर रहे।

ज्ञान-मुद्रा

दोनों हाथों को घुटनों पर टिकाएं। अंगूठे और तर्जनी के अग्र-भागों को मिलाएं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहे।

इन दोनों मुद्राओं में से किसी एक मुद्रा का प्रयोग करें।

ध्यान-मुद्रा

आंखों को बिना दबाव दिए कोमलता से बन्द करें। अभ्यास की परिपक्वता होने पर अर्धमुंदी आंखों अथवा खुली आंखों से भी ध्यान किया जा सकता है।

अर्हं की ध्वनि

प्रारम्भ में अर्हं की ध्वनि नौ बार करें।

श्वास भरें, पूरक करें। उसको धीरे-धीरे छोड़ते समय अर्हं का उच्चारण करें।

'अ' का उच्चारण करते समय चित्त नाभि पर केन्द्रित करें। (२ सेकण्ड)

'र्हं' का उच्चारण करते समय चित्त को आनंदकेन्द्र पर केन्द्रित करें। (४ सेकण्ड)

'म्' की ध्वनि करते समय चित्त को विशुद्धिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र तक ले जाएं। (६ सेकण्ड)

अंतिम नाद के समय चित्त को ज्ञानकेन्द्र पर टिकाएं। (२ सेकण्ड)

महाप्राण-ध्वनि

दोनों नथुनों से श्वास लें। उसका रेचन करते समय भंवरे की तरह नाक से गुंजन करें। (९ बार)

अर्हं की ध्वनि के स्थान पर अपेक्षानुसार महाप्राण ध्वनि का प्रयोग किया जा सकता है।

ध्येय-सूत्र

'**संपिक्खए अप्पगमप्पएणं**' **का उच्चारण करें।** (३ बार)

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें। स्वयं ही स्वयं को देखें।

ध्यान का प्रयोजन

अपने-आपको देखने के लिए प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करें।

ध्यान का संकल्प

मैं चित्त-शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कर रहा हूं। (३ बार)

ध्यान का पहला चरण

कायोत्सर्ग

१. शरीर को स्थिर, शिथिल और तनाव मुक्त करें। मेरुदंड और गर्दन को सीधा रखें, अकड़न न हो। मांसपेशियों को ढीला छोड़ें। शरीर की पकड़ को छोड़ें—ममत्व का विसर्जन करें।

२. पांच मिनट तक कायोत्सर्ग का अभ्यास करें। प्रतिमा की भांति शरीर को स्थिर रखें। हलन-चलन न करें। पूरी स्थिरता।

कायोत्सर्ग के समय दिये जाने वाले सुझाव–

१. पूरे शरीर को शिथिल करें।

२. शरीर के प्रत्येक अवयव के प्रति जागरूक रहें।

३. अनुभव करें–पूरा शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है।

पूरे ध्यान काल तक कायोत्सर्ग की मुद्रा बनी रहे। शरीर को अधिक से अधिक स्थिर और निश्चल रखने का अभ्यास करें।

ध्यान का दूसरा चरण

अन्तर्यात्रा

प्रयोग नं. १

१. चित्त को शक्तिकेन्द्र पर ले जाएं।

२. ऊपर उठाएं, सुषुम्णा के मार्ग से ज्ञानकेन्द्र तक लाएं।

३. फिर उसी मार्ग से शक्तिकेन्द्र तक नीचे लाएं।

४. सुषुम्णा में चित्त की यात्रा करें। नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे।

५. वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

६. पूरी चेतना को सुषुम्णा में समेट लें। दो मिनट तक इसका अभ्यास करें। चित्त को श्वास के साथ जोड़ें।

श्वास छोड़ते समय चित्त को नीचे से ऊपर ले जाएं। और श्वास लेते समय चित्त को ऊपर से नीचे लाएं।

(प्रारम्भ में ब्लडप्रेशर मापने के यन्त्र के उदाहरण से पारे की तरह चित्त को ऊपर-नीचे घुमाने की बात समझा दें। इस बात को प्रशिक्षण में स्पष्ट कर दें या पहले प्रयोग के समय बता दें।)

अभ्यास की परिपक्वता होने पर अन्तर्यात्रा के अनेक प्रयोग किये जा सकते हैं। जैसे–

प्रयोग नं. २

१. चित्त को शक्ति केन्द्र पर ले जाएं।

२. ऊपर उठाएं, सुषुम्णा के मार्ग से विशुद्धि केन्द्र तक लाएं।

३. फिर उसी मार्ग से शक्ति केन्द्र तक नीचे लाएं। सुषुम्णा में चित्त की यात्रा करें। पूरा ध्यान अन्तर्यात्रा के पथ पर रहे।

४. विशुद्धिकेन्द्र से शक्तिकेन्द्र और शक्तिकेन्द्र से विशुद्धिकेन्द्र पर चित्त की यात्रा चले। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। पूरी चेतना को अन्तर्यात्रा के पथ में समेट लें।

१. चित्त को श्वास के साथ जोड़ें।

२. श्वास छोड़ते समय चित्त को शक्तिकेन्द्र से विशुद्धिकेन्द्र की ओर ले जाएं।

३. श्वास लेते समय चित्त को विशुद्धिकेन्द्र से शक्तिकेन्द्र की ओर लाएं।

विशुद्धिकेन्द्र पर चित्त की यात्रा की जो विधि बतलाई गई है, वही विधि शेष केन्द्रों के लिए अनुसरणीय है।

शक्तिकेन्द्र, स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र और विशुद्धि-केन्द्र—इन सब चैतन्यकेन्द्रों का मूल रीढ़ की हड्डी में अवस्थित है। इसलिए अन्तर्यात्रा के साथ इन चैतन्यकेन्द्रों पर चित्त की यात्रा की जा सकती है।

ध्यान का तीसरा चरण

(क) श्वासप्रेक्षा

१. दीर्घश्वास प्रेक्षा

श्वास की गति को मंद करें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास लें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास छोड़ें।

श्वास को लयबद्ध और समतल करें। पहली बार श्वास को लेने और छोड़ने में जितना समय लगे उतना ही समय प्रत्येक श्वास को लेने और छोड़ने में लगे। इस सुझाव को प्रारम्भ में एक-दो बार किया जाए।

श्वास के कम्पन नाभि तक पहुंचें। श्वास लेते समय पेट की मांसपेशियां फूलती हैं, छोड़ते समय सिकुड़ती हैं। चित्त को नाभि पर

केन्द्रित करें और पेट की मांसपेशियों के फूलने और सिकुड़ने का अनुभव करें तथा आते-जाते श्वास का अनुभव करें।

प्रत्येक श्वास को जानते हुए लें और जानते हुए छोड़ें। चित्त की सारी शक्ति श्वास को देखने में लगा दें। केवल श्वास का अनुभव करें।

गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ दीर्घश्वास-प्रेक्षा का अभ्यास करें।....कुछ समय बाद चित्त को नाभि से हटाकर दोनों नथुनों के भीतर संधि-स्थल पर केन्द्रित करें। आते-जाते प्रत्येक श्वास का अनुभव करें।

यदि विकल्प आते हैं तो उन्हें रोकने का प्रयत्न न करें। केवल द्रष्टा भाव से देखें और बीच-बीच में श्वास-संयम का प्रयोग करें या जीभ को उलट कर तालु से लगा दें। श्वास के प्रति जागरूक रहें। केवल श्वास का अनुभव करें।

२. समवृत्तिश्वास-प्रेक्षा

१. श्वास की गति को मंद करें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास लें, धीरे-धीरे लम्बा श्वास छोड़ें।

दाएं नथुने को अंगूठे से बन्द कर बाएं नथुने से श्वास लें। फिर बाएं नथुने को अंगुली से बन्द कर दाएं नथुने से श्वास छोड़ें। दाएं नथुने से श्वास लें। फिर दाएं नथुने को अंगूठे से बन्द कर बाएं नथुने से श्वास छोड़ें। यह एक आवृत्ति है। अभ्यास के परिपक्व होने पर केवल संकल्प के सहारे समवृत्तिश्वास का प्रयोग करें।

श्वास के साथ चित्त को जोड़ें। चित्त और श्वास दोनों साथ-साथ चलें। केवल श्वास का अनुभव करें। समवृत्तिश्वास-प्रेक्षा।

बीच-बीच में यह सुझाव देते रहें....चित्त और श्वास दोनों साथ-साथ चलें। श्वास भीतर, चित्त भीतर। श्वास बाहर, चित्त बाहर।

२. श्वास संयम के साथ समवृत्तिश्वास-प्रेक्षा का प्रयोग करें।

१. बाएं नथुने से श्वास लें और उसे भीतर रोकें।

२. दाएं नथुने से श्वास निकालें और उसे बाहर रोकें।

३. दाएं नथुने से लें और उसे भीतर रोकें।

४. बाएं नथुने से श्वास निकालें और उसे बाहर रोकें।

प्रत्येक आवृत्ति में इस प्रकार चार बार श्वास-संयम का प्रयोग करें।

यह ध्यान रहे कि जितने समय तक सुविधा से रोक सकते हैं, उतने समय तक रोकें। (एक सेकण्ड से पांच सेकण्ड तक) जबर्दस्ती बिल्कुल न करें। श्वास के प्रति पूर्ण जागरूक रहें।

ध्यान का तीसरा चरण

(ख) शरीरप्रेक्षा

शरीरप्रेक्षा में हमें शरीर को देखना है। खुली आंखों से नहीं, चित्त से। आंखें बंद रहेंगी। चित्त को शरीर के प्रत्येक अवयव पर ले जाकर वहां होने वाले परिणमन, स्पन्दन, प्रकम्पन, संवेदन आदि को द्रष्टा भाव से देखना है। कपड़े का स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द आदि जो कुछ अनुभव हो, उसे देखना है, केवल देखना है, उसका अनुभव करना है–इस बात को प्रशिक्षण में स्पष्ट कर दें तथा प्रयोग के साथ भी बताएं।

१. चित्त को दाएं पैर के अंगूठे पर केन्द्रित करें। पूरे भाग की प्रेक्षा करें। चित्त की यात्रा करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल अनुभव करें। प्रियता और अप्रियता से मुक्त रहकर केवल द्रष्टा भाव से देखें और जानें।

२. इसी तरह प्रत्येक अंगुली....पंजा....तलवा....एड़ी....टखना.... पिण्डली....घुटना....जंघा.... और कटि-भाग।

प्रत्येक अवयव पर आधा से एक मिनट प्रेक्षा करें। प्राण के प्रकम्पनों को द्रष्टा भाव से देखें। यथावकाश इस वाक्य को दोहराते रहें।

३. इसी प्रकार बाएं पैर के प्रत्येक भाग की प्रेक्षा करें।

अधोलोक की यात्रा संपन्न।

४. अब मध्यलोक की यात्रा प्रारम्भ करें–

वस्तिप्रदेश और पेडू की प्रेक्षा करें। दाएं-बाएं, आगे-पीछे, बाहर और भीतर–प्रत्येक भाग में चित्त को केन्द्रित करें और वहां होने वाले प्राण

के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल द्रष्टा भाव से देखें। (एक, दो मिनट बाद)

५. अब पेट के प्रत्येक भीतरी अवयव की प्रेक्षा करें—दोनों गुर्दे... बड़ी आंत....छोटी आंत....अग्न्याशय....पक्वाशय....आमाशय....तिल्ली.... यकृत और तनुपट....प्रत्येक अवयव पर २० से ३० सेकण्ड रुकें।

६. अब वक्षस्थल के पूरे भाग की यात्रा करें। दाएं-बाएं, आगे-पीछे, बाहर-भीतर, प्रत्येक भाग में चित्त को केन्द्रित करें—वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। अब वक्षस्थल के प्रत्येक अवयव की प्रेक्षा करें—हृदय....दायीं पसलियां...बायीं पसलियां,....दायां फेफड़ा,....बायां फेफड़ा...।

७. पीठ का पूरा भाग—मेरुदण्ड, सुषुम्णा, सुषुम्णा-शीर्ष....गर्दन।

८. अब दोनों हाथों की प्रेक्षा करें—दायां हाथ....अंगूठा... अंगुलियां ....हथेली....मणिबंध....मणिबंध से कोहनी तक.... कोहनी से कंधे तक की प्रेक्षा करें।

९. इसी प्रकार बाएं हाथ के अंगूठे से कंधे तक प्रत्येक भाग की प्रेक्षा करें।

१०. कंठ...स्वरयंत्र...प्रत्येक भाग की प्रेक्षा करें।

मध्यलोक की यात्रा संपन्न।

अब ऊर्ध्वलोक की यात्रा प्रारम्भ करें—

११. ठुड्डी... होंठ... मुंह-मसूढ़े.... दांत.... जीभ.... तालु....दायां कपोल.... बायां कपोल... नाक..... दायीं कनपटी, दायां कान....बायीं कनपटी, बायां कान....दायीं आंख.....बायीं आंख... ललाट और सिर प्रत्येक भाग की प्रेक्षा करें।

ऊर्ध्वलोक की यात्रा संपन्न।

अब एक साथ पूरे शरीर की प्रेक्षा करें। जो आसानी से खड़े-खड़े ही कर सकते हैं, वे खड़े-खड़े करें।

चित्त में यह क्षमता है कि वह एक बिन्दु पर केन्द्रित हो सकता है और एक साथ पूरे शरीर में फैल सकता है। चित्त को पैर के दोनों अंगूठों

पर केन्द्रित करें। पूरे शरीर के आकार में फैलाते हुए पैर से सिर तक शीघ्रता से ले जाएं। उसी गति से सिर से पैर तक लाएं। बीच-बीच में श्वास-संयम के साथ शरीर-प्रेक्षा का प्रयोग करें। शरीर के कण-कण का स्पर्श करें। शरीर का कण-कण चेतना और प्राण के स्पर्श से झंकृत हो उठे। अनुभव करें, जैसे पूरे शरीर में बिजली की धारा दौड़ रही है। कपड़े का स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द, स्पन्दन जो कुछ हो रहा है, उसका तटस्थ भाव से अनुभव करें। अब धीमी गति से चित्त की यात्रा चले। कहीं पीड़ा, अवरोध हो उस पर कुछ क्षणों के लिए रुकें। केवल जानें, पूर्ण समभाव रहे। (३ मिनट)

ध्यान का तीसरा चरण

(ग) चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा जागरण की प्रक्रिया है। सुप्त चैतन्यकेन्द्रों को प्रेक्षा के द्वारा जागृत करना है। चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा में प्रत्येक केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता तथा पूरी जागरूकता बनी रहे। केवल देखें, जानें, अनुभव करें। द्रष्टा भाव से प्रेक्षा करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक मस्तिष्क से पीछे की दीवार तक पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। सुप्त चैतन्यकेन्द्रों को प्रेक्षा के द्वारा जागृत करें। प्रत्येक केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करें और वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। यह सुझाव प्रारम्भ में एक-दो बार दें।

१. शक्तिकेन्द्र–चित्त को शक्तिकेन्द्र–पृष्ठरज्जु के निचले सिरे पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ शक्तिकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

२. स्वास्थ्यकेन्द्र–चित्त को स्वास्थ्यकेन्द्र–पेडू के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक चित्त के प्रकाश को फैलाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ स्वास्थ्यकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

३. तैजसकेन्द्र–चित्त को तैजसकेन्द्र–नाभि के स्थान पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक पूरे भाग में चित्त को फैलाएं। जैसे टॉर्च का

चैतन्य केन्द्र : स्थान और नाम

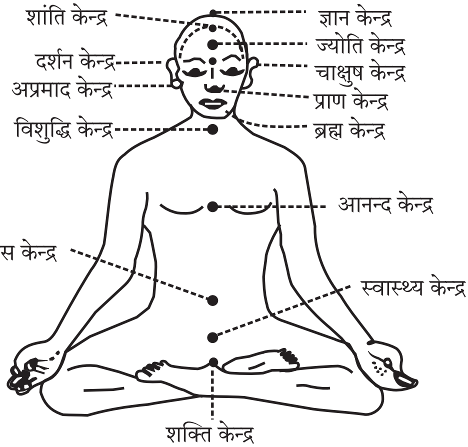

प्रकाश सीधी रेखा में फैलता है, वैसे ही चित्त के प्रकाश को सीधी रेखा में पीछे तक ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ तैजसकेन्द्र की प्रेक्षा करें, जिससे स्वतः ही श्वास-संयम हो जाए।

४. **आनन्दकेन्द्र**–चित्त को आनन्दकेन्द्र–हृदय के पास दोनों फुफ्फुस के बीच जो गड्ढ़ा है, वहां केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक टॉर्च के प्रकाश की भांति चित्त के प्रकाश को फैलाएं और वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच-बीच में श्वास-संयम का प्रयोग करें।

५. **विशुद्धिकेन्द्र**–चित्त को विशुद्धिकेन्द्र–कण्ठ के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक चित्त के प्रकाश को पृष्ठ भाग में फैलाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच-बीच में श्वास-संयम का प्रयोग करें।

६. **ब्रह्मकेन्द्र**–चित्त को ब्रह्मकेन्द्र–जीभ के अग्र-भाग पर केन्द्रित करें। जीभ अधर में रहे। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

७. **प्राण केन्द्र**–चित्त को प्राणकेन्द्र–नासाग्र पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

८. **अप्रमादकेन्द्र**–चित्त को अप्रमादकेन्द्र–दोनों कानों पर, भीतरी,

मध्य और बाहरी भाग पर तथा आस-पास के भाग पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

९. **चाक्षुषकेन्द्र**–चित्त को चाक्षुषकेन्द्र–दोनों आंखों के भीतर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

१०. **दर्शनकेन्द्र**–चित्त को दर्शनकेन्द्र–दोनों भृकुटियों के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई में ले जाएं। आगे से पीछे मस्तिष्क के पीछे की दीवार तक चित्त के प्रकाश को फैला दें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ केवल प्रेक्षा करें, अनुभव करें। बीच-बीच में श्वास-संयम का प्रयोग करें।

११. **ज्योतिकेन्द्र**–चित्त को ज्योति केन्द्र, ललाट के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं। आगे से पीछे मस्तिष्क के पीछे के भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। बीच-बीच में श्वास-संयम का प्रयोग करें।

१२. **शांतिकेन्द्र**–चित्त को शांतिकेन्द्र–सिर के अग्र-भाग पर केन्द्रित करें, जैसे दीये का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलता है वैसे चित्त का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलाएं। भीतर गहराई तक चित्त को ले जाएं, वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

१३. **ज्ञानकेन्द्र**–चित्त को ज्ञानकेन्द्र–सिर के ऊपरी भाग, चोटी के स्थान पर केन्द्रित करें। दीये के प्रकाश की भांति पूरे भाग में चित्त के प्रकाश को फैलाएं। भीतर गहरे तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

अब एक साथ सभी चैतन्यकेन्द्रों की प्रेक्षा करें। जो खड़े-खड़े कर सकते हैं, वे खड़े-खड़े करें।

१. चित्त को शक्तिकेन्द्र पर ले जाएं, फिर क्रमशः स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र आदि प्रत्येक चैतन्यकेन्द्र की यात्रा करते हुए पुनः शक्तिकेन्द्र पर ले आएं।

२. वृत्ताकार में सभी चैतन्यकेन्द्रों पर चित्त की यात्रा चले।

३. तेजी के साथ चित्त को सभी चैतन्यकेन्द्रों पर घुमाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। (२,३ मिनट)

ध्यान का तीसरा चरण

(घ) लेश्याध्यान

(प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक आभामण्डल होता है। उसके रंग भाव परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। भाव और आभामण्डल का गहरा संबंध है। हम भाव शुद्धि के द्वारा आभामण्डल को विशुद्ध बना सकते हैं और आभामण्डल की विशुद्धि से भाव की विशुद्धि को जाना जा सकता है।)[1]

आनन्दकेन्द्र पर हरे रंग का ध्यान

चित्त को आनन्दकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए हरे रंग का ध्यान करें।

अनुभव करें—शरीर के चारों ओर चमकते हुए हरे रंग के परमाणु फैल रहे हैं, हरे रंग का प्रकाश फैल रहा है। हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

कुछ क्षणों बाद अनुभव करें—आनन्द केन्द्र से हरे रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल हरे रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें। अनुभव करें—भावधारा निर्मल हो रही है, भावधारा निर्मल हो रही है, भावधारा निर्मल हो रही है।

विशुद्धिकेन्द्र पर नीले रंग का ध्यान

चित्त को विशुद्धिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए नीले रंग का ध्यान करें।

अनुभव करें—शरीर के चारों ओर चमकते हुए नीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं, नीले रंग का प्रकाश फैल रहा है। नीले रंग का श्वास लें।

---

१. यह जानकारी पहले प्रयोग के समय या प्रशिक्षण के समय दें।

अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

कुछ क्षणों बाद अनुभव करें–विशुद्धिकेन्द्र से नीले रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल नीले रंग के परमाणुओं से भर रहा हैं। उन्हें देखें, अनुभव करें,....अनुभव करें–वासनाएं अनुशासित हो रही हैं, वासनाएं अनुशासित हो रही हैं, वासनाएं अनुशासित हो रही हैं।

दर्शनकेन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान

चित्त को दर्शनकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए अरुण रंग का ध्यान करें।

अनुभव करें–शरीर के चारों और चमकते हुए अरुण रंग के परमाणु फैल रहे हैं, अरुण रंग का प्रकाश फैल रहा है। अरुण रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ अरुण रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

कुछ क्षणों बाद अनुभव करें–दर्शनकेन्द्र से अरुण रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल अरुण रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें,....अनुभव करें–अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही है, अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही है, अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही है।

ज्ञानकेन्द्र पर पीले रंग का ध्यान

चित्त को ज्ञानकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए पीले रंग का ध्यान करें।

अनुभव करें–शरीर के चारों ओर चमकते हुए पीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं, पीले रंग का प्रकाश फैल रहा है। पीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ पीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

कुछ क्षणों बाद अनुभव करें–ज्ञानकेन्द्र से पीले रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल पीले रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें,...अनुभव करें–ज्ञान-तंतु विकसित हो रहे हैं, ज्ञान-तंतु विकसित हो रहे हैं, ज्ञान-तंतु विकसित हो रहे हैं।

ज्योतिकेन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान

चित्त को ज्योतिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें।

अनुभव करें–शरीर के चारों ओर चमकते हुए श्वेत रंग के परमाणु फैल रहे हैं, श्वेत रंग का प्रकाश फैल रहा है। श्वेत रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ श्वेत रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

कुछ क्षणों बाद अनुभव करें–ज्योतिकेन्द्र से श्वेत रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामंडल श्वेत रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें,...अनुभव करें–क्रोध शांत हो रहा है, क्रोध शांत हो रहा है, क्रोध शांत हो रहा है।

ध्यान का चौथा चरण

ज्योतिकेन्द्र-प्रेक्षा

चित्त को ज्योति केन्द्र–ललाट के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। वहां चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें। अनुभव करें..जैसे पूर्णिमा का चांद उदित हो रहा है, उसकी श्वेत रश्मियां ज्योतिकेन्द्र पर गिर रही हैं। ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का साक्षात्कार करें।

अनुभव करें–क्रोध शांत हो रहा है।

आवेग और आवेश शांत हो रहे हैं।

वासनाएं शांत हो रही हैं।

(२,३ मिनट के बाद)

१. चित्त को पूरे ललाट पर फैलाएं, वहां श्वेत रंग का ध्यान करें।

२. अनुभव करें–पूरे ललाट के भीतर श्वेत रंग के परमाणु प्रवेश कर रहे हैं।

३. पूरा ललाट श्वेत रंग के परमाणुओं से भर रहा है।

शांति व आनन्द का अनुभव करें।

दो, तीन लम्बे श्वास के साथ प्रयोग संपन्न करें।

समापन-विधि

विवेक-सूत्र-१

दूसरों के द्वारा खोजा हुआ सत्य प्रकाश देता है, पर एक सीमा तक। इसलिए आवश्यक है—स्वयं सत्य की खोज करना, और उसका सार तत्त्व है—प्राणी मात्र के साथ मैत्री करना।

अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेत्तिं भूएसु कप्पए.....

स्वयं सत्य खोजें, सबके साथ मैत्री करें। (३ बार)

विवेक सूत्र-२

ज्ञान और प्रयोग जब एक साथ होते हैं तब होता है जानना सार्थक। जानने से लाभ तभी होता है, जब उसे व्यवहार में लाया जाता है।

आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं।

दुःख मुक्ति के लिए विद्या और आचार का अनुशीलन करें। (३ बार)

शरण-सूत्र-३

हमारी दुनिया में बाधक तत्त्व बहुत हैं। उनसे बचने के लिए आवश्यक है—सुरक्षा कवच अथवा सुरक्षागृह, जो बाधा से प्रभावित नहीं होते।

अरहंते सरणं पवज्जामि
सिद्धे सरणं पवज्जामि
साहू सरणं पवज्जामि
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

मैं अर्हत् की शरण स्वीकार करता/करती हूं।
मैं सिद्ध की शरण स्वीकार करता/करती हूं।
मैं साधु की शरण स्वीकार करता/करती हूं।
मैं केवली-प्रज्ञप्त धर्म की शरण स्वीकार करता/करती हूं।

श्रद्धा-सूत्र-४

हर व्यक्ति के अंतःस्तल में विराजमान आत्मा ही सत्य है और सत्य है सार्वभौम नियम। आत्मा की वंदना का अर्थ है शुद्ध चेतना की वंदना।

वंदे सच्चं। (३ बार)

विधि....वन्दनासन की मुद्रा में पूरा श्वास भरें, श्वास छोड़ते समय 'वन्दे' का उच्चारण करें। मेरुदण्ड और गर्दन सीधी रहे। 'सच्चं' का उच्चारण करते समय नीचे जमीन तक झुकें, श्वास भरते हुए उठें। (३ बार)

अनुप्रेक्षा

अनित्य-अनुप्रेक्षा

जिस स्थान पर बैठे हैं, यह मात्र संयोग है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। स्थान के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। स्थान से अपने विसंबंध (भिन्नता) का अनुभव करें।

जिस आसन पर बैठे है, यह मात्र संयोग है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। आसन के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। आसन से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

शरीर पर जो वस्त्र पहने हुए हैं, यह मात्र संयोग है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। वस्त्र के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। वस्त्र से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

यह शरीर मात्र एक संयोग है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। शरीर के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। शरीर से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

शरीर में होने वाले ये रोग मात्र एक संयोग हैं। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। रोग के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। रोग से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

ये मन की उलझनें, मानसिक समस्याएं, मात्र एक संयोग हैं। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। मानसिक समस्याओं के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। समस्याओं से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

ये उपाधियां–आवेग, आवेश–क्रोध, अहंकार आदि जितनी उपाधियां हैं, मात्र एक संयोग है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। उपाधियों के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। उपाधियों से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

ये स्वभाव, आदतें (लड़ने की आदत, नशे की आदत, अलग-अलग प्रकार की आदतें) मात्र संयोग हैं। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। स्वभाव, आदतों के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। स्वभाव, आदतों से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

यह सूक्ष्म शरीर जहां से उपाधियां आती हैं, मात्र एक संयोग है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। सूक्ष्म शरीर के साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। उपाधियों से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

मेरा चैतन्य स्थान, आसन, वस्त्र, शरीर, रोग, मानसिक उलझनें, आदतें, सूक्ष्म-शरीर इन सबसे भिन्न है। इन सबके साथ संयोग से जुड़ा हुआ है। जो संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। इनके साथ संयोग का अनुचिंतन करें। अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। चेतना से इन सबके विसंबंध का अनुभव करें।

जिस क्रम से चले थे, अब फिर सब संयोगों को पार कर उसी क्रम में लौटें। सूक्ष्म शरीर, उपाधियां, आदतें, मानसिक उलझनें, रोग, शरीर, वस्त्र, आसन और स्थान–प्रत्येक का अनुचिंतन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं।

इमं सरीरं अणिच्चं, इमं सरीरं अणिच्चं, इमं सरीरं अणिच्चं–

यह शरीर अनित्य है। प्रतिक्षण अनेक कोशिकाएं नष्ट हो रही हैं, नई बन रही हैं–कभी आशा, कभी निराशा, नाना प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं।

इमे रोगा अणिच्चा–ये रोग अनित्य हैं, स्थायी नहीं हैं, चले जाने वाले हैं।

इमे मणोरोगा अणिच्चा–ये मानसिक उलझनें अनित्य हैं।

इमे भावा अणिच्चा–ये भाव अनित्य हैं।

यह विसंबंध का प्रयोग है। स्थूल से सूक्ष्म की तरफ चलें। सारे सम्बन्धों को देखते चले जाएं। ये जुड़े हुए हैं, इनको देखते चले जाएं। पर संयोग मूर्च्छा न बन जाए। बाद में जो कुछ बचेगा, वह मैं हूं। चिंतन करें। अनुचिंतन करें। गहराई से चिंतन करें।

(**नोट–**अनित्य-अनुप्रेक्षा करने से पहले अर्हं की ध्वनि और ध्येय सूत्र का उच्चारण करें तथा कायोत्सर्ग की मुद्रा में यह प्रयोग करें।)

सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

१. मुद्रा का चयन करें।

२. महाप्राण ध्वनि। (२ मिनट)

३. कायोत्सर्ग। (५ मिनट)

४. अनुभव करें–अपने चारों ओर नीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं। मयूर की गर्दन की भांति चमकते हुए नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनट)

५. चित्त को विशुद्धिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां नीले रंग का ध्यान करें। (३ मिनट)

६. ज्योतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–

सहिष्णुता का भाव पुष्ट हो रहा है।

मानसिक संतुलन बढ़ रहा है।

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। (५ मिनट)

अनुचिंतन करें–तीन प्रकार के संवेदन होते हैं–शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक।

(१) शारीरिक संवेदन–जैसे–

(क) ऋतुजनित संवेदन (सर्दी-गर्मी से होने वाला संवेदन),

(ख) रोगजनित संवेदन (रोग से होने वाला संवेदन)।

(२) मानसिक संवेदन–जैसे–

(क) सुख-दुःख,

(ख) अनुकूलता-प्रतिकूलता।

(३) भावात्मक संवेदन–जैसे–

(क) विरोधी विचार,

(ख) विरोधी स्वभाव,

(ग) विरोधी रुचि।

ये संवेदन मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है।

यदि इनका प्रभाव बढ़ा तो मेरी शक्तियां क्षीण होंगी।

जितना इनसे कम प्रभावित होऊंगा, उतनी ही मेरी शक्तियां बढ़ेंगी।

इसलिए सहिष्णुता का विकास मेरे जीवन की सफलता का महामंत्र है। (१० मिनट)

७. महाप्राण ध्वनि के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग संपन्न करें। (२ मिनट)

मृदुता की अनुप्रेक्षा

१. मुद्रा का चयन करें।

२. महाप्राण ध्वनि। (२ मिनट)

३. कायोत्सर्ग। (५ मिनट)

४. अनुभव करें–अपने चारों ओर हरे रंग के परमाणु फैले हुए हैं। पन्ने की भांति चमकते हुए हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनट)

५. दर्शनकेन्द्र पर हरे रंग का ध्यान करें। (३ मिनट)

६. शांतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–

'मृदुता का भाव पुष्ट हो रहा है,

अहं का भाव क्षीण हो रहा है।'

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। (५ मिनट)

अनुचिंतन करें–

१. व्यक्ति और वस्तु के प्रति मेरा व्यवहार विनम्र होना चाहिए।

२. सत्य के प्रति विनम्र भाव–जो मैं कहता हूँ वही सत्य है, इस आग्रह से बचने का मनोभाव।

३. मुझे अपने अहं का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

४. कृतज्ञता के लिए साधुवाद, धन्यवाद देना, सत्य प्रकृति का अनुमोदन करना जीवन की सफलता का एक आवश्यक तत्त्व है।

५. अपनी भूल के लिए खेद प्रकट करना, अप्रिय व्यवहार हो जाने पर क्षमायाचना करना, अपने आपको बड़ा बनाने का उपाय है। इन सबके प्रति मैं जागरूक बना रहूंगा। (१० मिनट)

६. महाप्राण ध्वनि के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग संपन्न करें। (२ मिनट)

अभय की अनुप्रेक्षा

१. मुद्रा का चयन करें।

२. महाप्राण ध्वनि (२ मिनट)

३. कायोत्सर्ग (५ मिनट)

४. अनुभव करें–अपने चारों ओर गुलाबी रंग के परमाणु फैले हुए हैं। गुलाब के फूल की भांति चमकते हुए गुलाबी रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ गुलाबी रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनट)

५. आनन्दकेन्द्र–हृदय के पास गुलाबी रंग का ध्यान करें। (३ मिनट)

६. दर्शनकेन्द्र–भृकुटियों के बीच ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–

'अभय का भाव पुष्ट हो रहा है,

भय का भाव क्षीण हो रहा है।'

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। (५ मिनट)

अनुचिंतन करें—अभय के गुण का अनुचिंतन करें।

भय से विकसित शक्तियां कुण्ठित हो जाती हैं।

नई शक्तियां विकसित नहीं हो पातीं इसलिये मुझे अभय होने का अभ्यास करना चाहिए। जो डरता है उसे सभी डराते हैं।

भय आदमी को कमजोर बनाता है।

कमजोर आदमी का कोई सहयोग नहीं करता।

शक्ति के विकास के लिए अभय की साधना करूं, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

मैं निश्चय ही भय से छुटकारा पा लूंगा। (१० मिनट)

७. महाप्राण ध्वनि के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग संपन्न करें। (२ मिनट)

सामंजस्य की अनुप्रेक्षा

१. मुद्रा का चयन करें।

२. महाप्राण ध्वनि। (२ मिनट)

३. कायोत्सर्ग। (५ मिनट)

४. अनुभव करें—अपने चारों ओर नीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं। मयूर की गर्दन की भांति चमकता हुआ नीला रंग। नीले रंग का श्वास लें, अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

५. चित्त को शक्तिकेन्द्र—सुषुम्णा के अन्तिम छोर पर केन्द्रित करें। चमकते हुए नीले रंग का ध्यान करें।

६. आनन्दकेन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें—

मैं शांतिपूर्ण-सहअस्तित्व का अभ्यास करूंगा।

मैं किसी भी उत्तेजना या तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर नौ बार मानसिक जप करें।

अनुचिंतन करें—सामंजस्य के बाधक तत्त्व पांच हैं—आग्रह, विचार-भेद, रुचि भेद, स्वार्थभेद और विरोध।

१. आग्रह—मैं आग्रह के स्थान पर अनाग्रह का प्रयोग करूंगा।

२. विचार भेद—मैं दूसरों के विचारों का सम्मान करूंगा। उन्हें समझने का प्रयत्न करूंगा।

३. रुचि भेद—मैं दूसरों की रुचि का आदर करूंगा।

४. स्वार्थभेद—मैं अपने स्वार्थ को प्रधानता नहीं दूंगा, सबके हित की बात सोचूंगा।

५. विरोध—मैं विरोध की स्थिति में भी मैत्री का प्रयोग करूंगा। (१० मिनट)

महाप्राण ध्वनि के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग संपन्न करें। (२ मिनट)

स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा

१. मुद्रा का चयन करें।

२. महाप्राण ध्वनि (२ मिनट)

३. संकल्प....मैं स्वस्थ होने के लिए प्रयोग कर रहा हूं। मेरी आन्तरिक शक्तियां मुझे आरोग्य प्रदान करेंगी।

४. चित्त को स्वास्थ्यकेन्द्र—नाभि से चार अंगुल नीचे केन्द्रित करें। मयूर की गर्दन की भांति चमकते हुए नीले रंग का ध्यान करें।

मंत्र का उच्चारण करें '**ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं**' का जप। (२-३ मिनट)

५. कायोत्सर्ग। (५ मिनट)

६. चित्त को आनन्दकेन्द्र—हृदय के मध्य केन्द्रित करें।

अनुप्रेक्षा करें–

मेरा मन शान्त हो रहा है।

मेरा मन संतुलित हो रहा है।

मेरा मन स्वस्थ हो रहा है।

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर मानसिक जप करें।

७. श्वासप्रेक्षा.... प्रत्येक निःश्वास के साथ अनुभव करें–शरीर के विकार बाहर निकल रहे हैं। शोधन हो रहा है। शरीर का कण-कण शुद्ध हो रहा है।

८. श्वास भरते समय अनुभव करें–चारों ओर स्वास्थ्य के परमाणु फैले हुए हैं। प्रत्येक श्वास के साथ वे भीतर प्रवेश कर रहे हैं।

प्रत्येक श्वास के साथ अनुभव करें–स्वास्थ्य की ब्रह्माण्डीय ऊर्जा फैली हुई है। प्रत्येक श्वास के साथ ऊर्जा शरीर के भीतर प्रवेश कर रही है।

९. मानसिक चित्र का निर्माण करें–अपने शक्तिशाली इष्ट जैसे महावीर या बाहुबली का साक्षात्कार करें।

अनुभव करें–रूपान्तरण हो रहा है। इष्ट के साथ तादात्म्य का अनुभव करें। (१० मिनट)

महाप्राण ध्वनि के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग संपन्न करें। (२ मिनट)

सम्पूर्ण कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग के तीन प्रकार–

१. ऊर्ध्व कायोत्सर्ग,

२. निषीदन कायोत्सर्ग,

३. शयन कायोत्सर्ग।

ऊर्ध्व कायोत्सर्ग–खड़े रहकर कायोत्सर्ग करने की मुद्रा।

सीधे खड़े रहें। दोनों हाथ साथल से सटे हुए। दोनों पैरों की एड़ियां सटी हुई और दोनों पंजों के बीच चार इंच का फासला। मेरुदण्ड और गर्दन सीधी। सिर थोड़ा झुका हुआ। ठुड्डी छाती से चार अंगुल ऊपर।

निषीदन कायोत्सर्ग–बैठकर कायोत्सर्ग करने की मुद्रा।

सुखासन, अर्धपद्मासन, पद्मासन और वज्रासन–इनमें से उस आसन का चुनाव करें, जिसमें लम्बे समय तक बैठ सकें। मेरुदण्ड सीधा, नेत्र मुंदे हुए अथवा अर्ध-मुंदित।

शयन कायोत्सर्ग–लेटकर कायोत्सर्ग करने की मुद्रा।

पीठ के बल लेटें। दोनों पैरों के मध्य एक फुट का फासला। दोनों हाथ शरीर के समानान्तर आधा फुट दूर। हथेलियां आकाश की तरफ खुलीं। गर्दन और सिर शिथिल। आंखें कोमलता से बंद। श्वास मंद, शरीर स्थिर और शिथिल।

कायोत्सर्ग खड़े रहकर, बैठकर और लेटकर तीनों मुद्राओं में किया जाता है। खड़े रहकर करना उत्तम कायोत्सर्ग, बैठकर करना मध्यम कायोत्सर्ग और लेटकर करना सामान्य कायोत्सर्ग है।

पहला चरण

कायोत्सर्ग के लिए तैयार हो जाएं। कायोत्सर्ग का प्रारम्भ खड़े-खड़े

होगा। लेटने जितने स्थान की व्यवस्था कर खड़े-खड़े कायोत्सर्ग का संकल्प करें।

संकल्प

सफलता के सोपान तक पहुंचने के लिए आवश्यक है संकल्प। दृढ़-संकल्प ध्यान के क्षणों में आने वाले विकल्पों से बचा देता है और ध्येय की सिद्धि में सहायक बनता है।

संकल्प सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं।

'मैं शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त होने के लिए कायोत्सर्ग का संकल्प करता हूं'।

कायोत्सर्ग की अवधि निश्चित करने का निर्देश दें।

दूसरा चरण

सीधे खड़े रहें। दोनों हाथ साथल से सटे हुए। दोनों पैरों की एड़ियां सटी हुई और दोनों पंजों के बीच चार इंच का फासला। मेरुदण्ड और गर्दन सीधी।

श्वास भरते हुए हाथों को ऊपर की ओर ले जाएं। पंजों पर खड़े होकर पूरे शरीर को तनाव दें। श्वास का रेचन करते हुए हाथों को साथल के पास ले आएं और शिथिलता का अनुभव करें।

तीसरा चरण

पीठ के बल लेटें। दोनों पैरों के मध्य एक फुट का फासला। दोनों हाथ शरीर के समानान्तर आधा फुट दूर। हथेलियां आकाश की तरफ खुलीं। गर्दन और सिर शिथिल। आंखें कोमलता से बंद।

प्रत्येक अवयव में सीसे की भांति भारीपन का अनुभव करें। (१ मिनट)

प्रत्येक अवयव में रुई की भांति हलकेपन का अनुभव करें। (२ मिनट)

चौथा चरण

श्वास मंद और शांत। चित्त को दायें पैर के अंगूठे पर केन्द्रित करें। शिथिलता का सुझाव दें–अंगूठे का पूरा भाग शिथिल हो जाए....अंगूठा शिथिल हो रहा है। अनुभव करें.... अंगूठा शिथिल हो गया है। इसी प्रकार प्रत्येक अंगुली, पंजा, तलवा, एड़ी, टखना, पिण्डली, घुटना, साथल तथा कटि-भाग को क्रमशः शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। इसी प्रकार बायें पैर के अंगूठे से लेकर कटि-भाग तक प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें।

पेडू का पूरा भाग, पेट के भीतरी अवयव–दोनों गुर्दे, बड़ी आंत, छोटी आंत, अग्न्याशय, पक्वाशय, आमाशय, तिल्ली, यकृत, तनुपट।

छाती का पूरा भाग–हृदय, दायां फेफड़ा, पसलियां, बायां फेफड़ा, पीठ का पूरा भाग–मेरुदण्ड, सुषुम्णा, गर्दन। दायें हाथ का अंगूठा, अंगुलियां, हथेली, मणिबंध से कोहनी और कोहनी से कंधा। इसी प्रकार बायें हाथ के प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें।

कंठ, स्वरयंत्र, ठुड्डी, होंठ, मसूड़े, दांत, जीभ, तालु, दायां कपोल, बायां कपोल, नाक, दायीं कनपटी, दायां कान, बायीं कनपटी, बायां कान, दायीं आंख, बायीं आंख, ललाट और सिर–प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। (५ मिनट)

शरीर के चारों ओर श्वेत रंग के प्रवाह का अनुभव करें। आभामण्डल की निर्मलता का अनुभव करें। कण-कण में शांति का अनुभव करें। (१० मिनट)

अब भेद विज्ञान का अनुभव करें। जैसे मथनी से छाछ और मक्खन को पृथक् किया जाता है वैसे ही शिथिलता के द्वारा शरीर और आत्मा को पृथक् किया जा सकता है।

शरीर अचेतन है, आत्मा चेतन है।

मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं।

शरीर दृश्य है, मैं द्रष्टा हूं।

अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वरूप का अनुभव करें।

पांचवां चरण

पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक चित्त और प्राण की यात्रा करें। तीन बार सुझाव दें।

अनुभव करें—पैर से सिर तक चैतन्य पूरी तरह जागृत हो गया है। प्रत्येक अवयव में प्राण का अनुभव करें।

तीन दीर्घश्वास के साथ कायोत्सर्ग संपन्न करें। दीर्घश्वास के साथ प्रत्येक अवयव में सक्रियता का अनुभव करें। बैठने की मुद्रा में आएं।

शरण सूत्र का उच्चारण करें। 'वंदे सच्चं' से कायोत्सर्ग संपन्न करें।

(कोई व्यक्ति अगर कायोत्सर्ग संपन्न होने पर भी न लौटे तो उसका स्पर्श न करें,जगाएं भी नहीं। प्रशिक्षक स्वयं निरीक्षण करे।)

परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

मंगल-भावना

जीवन की समग्रता के लिए आवश्यक है—निम्न निर्दिष्ट ९ सूत्रों का, भावनाओं का विकास।

श्री-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं आभा और संपदा से संपन्न बनूं।

ह्री-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं लज्जा—आत्मानुशासन से संपन्न बनूं।

धी-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं बुद्धि-संपन्न बनूं।

धृति-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं धैर्यसंपन्न बनूं।

शक्ति-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं शक्तिसंपन्न बनूं।

शान्ति-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं शांतिसंपन्न बनूं।

नन्दि-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं आनन्दसंपन्न बनूं।

तेजः-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं तैजससंपन्न बनूं।

शुक्ल-संपन्नोऽहं स्याम्

मैं शुक्लसंपन्न बनूं।

आनन्द-भावना

जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि है आनन्द। आध्यात्मिक चेतना के विकास के द्वारा ही उसकी अनुभूति हो सकती है।

आनन्दो मे वर्षति वर्षति

मेरे अन्तःकरण में आनन्द बरस रहा है, बरस रहा है।

नो मे दुःखं, नो मे दुःखम्

मुझे कोई दुःख नहीं है, कोई दुःख नहीं है।

शांतं चित्तं लब्धं लब्धम्

चित्त शांत हो गया है, शांत हो गया है।

नो मे तापः, नो मे तापः

अब कोई ताप नहीं है, कोई ताप नहीं है।

शक्ति-स्रोतः प्रादुर्भूतम्

भीतर में शक्ति का स्रोत फूट गया है।

नो मे दैन्यं, नो मे दैन्यम्

दीनता मिट गई है, दीनता मिट गई है।

अन्तश्चक्षुः लब्धं लब्धम्

अन्तश्चक्षु खुल गया है, खुल गया है।

नो मे रात्रिः, नो मे रात्रिः

अब मेरे सामने रात या अंधकार नहीं है।

नो मे दुःखं, नो मे तापः

मुझे न दुःख है, न ताप है।

नो मे दैन्यं, नो मे रात्रिः

अब न दीनता है, न रात है।

शांतः क्रोधः, शांतं मानम्

क्रोध भी शांत है, मान भी शांत है।

शांता माया, शांतो लोभः

माया भी शांत है, लोभ भी शांत है।

शांतं पापं, उदिता शक्तिः

पाप शांत हो गया है, शक्ति प्रकट हो गई है।

उदिता ऋजुता, उदिता मृदुता

ऋजुता उदित हो गई है, मृदुता आ गई है।

उदिता तृष्टिः, उदितो धर्मः

सन्तोष का उदय हो गया है, धर्म का उदय हो गया है।

नो मे दुःखं, नो मे रात्रिः

दीनता मिट गई है, रात समाप्त हो गई है।

उदितो धर्मः मुदितं चित्तम्

धर्म का उदय हो गया है, चित्त प्रमुदित है।

मुदितं चित्तं, मुदितं चित्तम्

चित्त प्रमुदित है, प्रमुदित है।

प्रेक्षा-संगान

प्रेक्षा श्रद्धां यायात्

प्रेक्षा श्रद्धा की कोटि में पहुंचे।

श्रद्धा वीर्यं यायात्

श्रद्धा पराक्रम की कोटि में पहुंचे।

वीर्यं चरणं यायात्

पराक्रम आचरण की कोटि में पहुंचे।

अन्तर्भावे मे, चिन्तायां मे

मेरे अन्तःकरण में, मेरे चिन्तन में।

आचरणे मे, व्यवहारे मे

मेरे आचरण में, मेरे व्यवहार में।

समता भूयात्, समता भूयात्

समता हो, समता हो।

नवसूर्यो मे उदयं यायात्

मेरे जीवन में नया सूरज उगे।

उदयं यायात्

नए प्रभात का उदय हो।

तेजोलेश्या उदयं यायात्

मेरे जीवन में तेजोलेश्या प्रकट हो।

उदयं यायात्

अध्यात्म की किरण फूटे।

प्रेक्षाध्यान गीत

आत्म-साक्षात्कार प्रेक्षाध्यान के द्वारा।
स्वप्न हो साकार इस अभियान के द्वारा।।

आत्मना आत्मावलोकन है यही दर्शन,
अन्तरात्मा में सहज हो सत्य का स्पर्शन।
क्षीण हो संस्कार अन्तर्धान के द्वारा।।१।।

मानसिक संतुलन जागृति और चित्त समाधि,
निकट आती, दूर जाती, व्याधि, आधि, उपाधि।
प्रेम का विस्तार निज संधान के द्वारा।।२।।

बदल जाते हैं रसायन, ग्रंथियों के स्राव,
बदलते व्यवहार सारे, बदलते हैं भाव।
बदलता संसार आनापान के द्वारा।।३।।

समस्या आवेग की है, विकटतम जग में,
आदतों की विवशता है, व्याप्त रग-रग में।
हो रहा उपचार इस अवदान के द्वारा।।४।।

अनुप्रेक्षा और लेश्याध्यान कायोत्सर्ग,
श्वासप्रेक्षा से धरा पर उतर आए स्वर्ग।
हृदय हो अविकार केवलज्ञान के द्वारा।
हृदय हो अविकार 'तुलसी' ज्ञान के द्वारा।।५।।

परिशिष्ट-५

प्रेक्षा-ध्यान का ध्येय

ध्यान करने वाले को अपना ध्येय निश्चित करना चाहिए। प्रेक्षाध्यान का ध्येय है–चित्त की निर्मलता, शुद्ध चेतना का अनुभव। वीतरागता का अनुभव ध्येय को संपुष्ट बनाता है।

प्रेक्षाध्यान-पद्धति का ध्येय-सूत्र है–अपने द्वारा अपने आप को जानें। जब तक आत्मा पर कषायों के मल का आवरण छाया है, हम अपने को जानने में असमर्थ रहते हैं। अतः आवरण को हटाने के लिए चित्त की एकाग्रता एवं चित्त की निर्मलता अत्यन्त जरूरी है। चित्त की निर्मलता प्राप्त होने से ही हमें शांति, मन का संतुलन, समता एवं आनन्द का अनुभव होने लगेगा। हमारी साधना की निष्पत्ति है आनन्द की अनुभूति। हमारे चित्त में आनंद तेजोलेश्या से, शांति पद्‌मलेश्या से तथा निर्मलता, समता एवं वीतरागता शुक्ललेश्या से प्राप्त होती है।

भावना योग

जब भी हम अध्यात्म का अभ्यास करेंगे, भावना करेंगे। भावना का अर्थ है–कवच का निर्माण।

हम अपने चारों ओर अण्डाकार कवच का निर्माण करेंगे। उससे हम बाहरी संक्रमणों से बचेंगे एवं जो भी अभ्यास करेंगे, सुचारु रूप से चलेगा। अर्हं की ध्वनि करने के साथ यह भावना करेंगे कि शरीर के चारों ओर सघन कवच का निर्माण हो रहा है। यही भावना कवच का निर्माण है।

भोजन-कालीन भावना

भावना हो पावना सद्‌भावना से हम जीएं,
साधना की अमल सरिता-पा, अमृत-रस हम पीएं।
देह-यात्रा को चलाने के लिए आहार हो,
और सहजानंद-पा, उसमें सघन संचार हो।
हे प्रभो! आहार प्रतिपल योग नित बनता रहे,
सतत जागृति और समता का सपना फलता रहे।
वेदना संवेदना से मुक्त भावक्रिया करें,
संविभागी धारणा से, स्वाद-मूर्च्छा को हरें।

प्रेक्षा-प्रशिक्षक की अर्हताएं

प्रेक्षा-प्रशिक्षक की भूमिका सामान्य प्रेक्षाध्यान साधक से विशिष्ट होनी चाहिए। निरंतर अभ्यास से होने वाली स्वानुभूतियां उसका संबल बनती हैं। प्रयोग और पद्धति की पूर्ण जानकारी उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

कब, कौन-सा परिणाम अन्यथा भी घटित हो सकता है और उसके निराकरण की क्या विधि होनी चाहिए। इसकी जानकारी भी होनी चाहिए। सामान्य साधक अपने स्तर पर ही प्रयोग करता है। किन्तु प्रशिक्षक में इसके अतिरिक्त अन्य को साधना करवाने और उसे गहराई तक पहुंचाने की क्षमता भी होनी चाहिए। बिन्दु रूप में अर्हताओं को इस तरह वर्गीकृत किया जा सकता है–

१. प्रयोगों को करने और कराने की विशिष्ट रुचि एवं जानकारी।
२. साधना जीवन का लक्ष्य बने और उस ओर निरंतर गति-प्रगति हो।
३. उच्चारण शुद्ध और प्रभावी हो।
४. व्यक्तित्व और आभामण्डल से साधना की प्रभावी झलक मिलनी चाहिए।
५. जीवन-मूल्यों को और प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा को सतत जीने की ललक हो।
६. ऐसी विशिष्ट जानकारी बढ़ाता रहे जिससे प्रशिक्षुओं की जिज्ञासाओं को समाहित किया जा सके।
७. सहिष्णु हो और स्थितियों को संभालने की क्षमता भी हो।
८. शिविर की व्यवस्थाओं की जानकारी के साथ कर्तव्यपरायणता के साथ सुचारु रूप से संचालन करने की क्षमता भी अर्जित करे।

९. ध्यान, साधना एवं आसन-प्राणायाम आदि विधियों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों और उसके निराकरण की जानकारी भी प्राप्त करे।

१०. व्यवहार मृदु होना चाहिए। आक्रोश और आवेश से बचता रहे।

११. जहां कहीं सेवाओं की आवश्यकता पड़े, समर्पित भाव से सेवा हेतु प्रस्तुत रहे।

१२. केन्द्र से संपर्क निरंतर बनाए रखे, जिससे नई विधियों की जानकारी होती रहे।

अणुव्रत आचार-संहिता

प्रेक्षाध्यान के साधक को यथासंभव निम्नलिखित अणुव्रत आचार-संहिता का पालन करना चाहिए।

१. मैं चलने-फिरने वाले निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।

२. मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूंगा और आक्रामक नीति का समर्थन भी नहीं करूंगा।

३. मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

४. मैं मानवीय एकता में विश्वास रखूंगा–

(क) जाति, वर्ण आदि के आधार पर किसी को अस्पृश्य और ऊंच-नीच नहीं मानूंगा।

(ख) मैं संपत्ति, सत्ता आदि के आधार पर किसी को हीन, उच्च नहीं मानूंगा।

५. मैं सब धर्म-संप्रदायों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखूंगा।

६. मैं व्यवसाय और व्यापार में सत्य की साधना करूंगा।

७. मैं चौर्य-वृत्ति से किसी की वस्तु नहीं लूंगा।

८. मैं स्वदार-संतोषी रहता हुआ ब्रह्मचर्य की साधना करूंगा।

९. मैं रुपए और अन्य प्रलोभन से मत/वोट न लूंगा, न दूंगा।

१०. मैं सामाजिक कुरीतियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

११. मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।